प्रसार दूत

कृषि विज्ञान की अग्रणी पत्रिका

सितम्बर 2021

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

कृषि प्रौद्योगिकी आकलन एवं स्थानान्तरण केन्द्र
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान
नई दिल्ली–110012

संपादकीय

किसान भाइयों नमस्कार। पिछले दो वर्षों से दुनियाभर में उथल पुथल मची हुई है। हमारे जीवन में कोविड–19 जैसी महामारी का पदार्पण हुआ है। जिसको हम टीकाकरण द्वारा ही रोक सकते हैं। इसके लिए हमें एक बहुत लंबी लड़ाई एवं धैर्य की जरूरत है। इस काल में किसानों द्वारा किया गया प्रयास ही हमारे आत्मबल को बढ़ाता है। क्योंकी उस समय देश की 80% जनसंख्या को निःशुल्क भोजन उपलब्ध करा पाना संभव हो पाया है तो वह किसानों की मेहनत का नतीजा ही है। इसके उपरांत भी देश को भारी आर्थिक एवं व्यक्तिगत जनहानि का नुकसान उठाना पड़ा है, जिसकी क्षतिपूर्ती को पूर्ण करने का प्रयास कर रहे हैं क्योंकी कुछ चीजें हमारे वश में नहीं होती हैं। कोरोना (कोविड–19) के गंभीर फैलाव को देखते हुए किसान भाइयों को सलाह दी जाती है कि तैयार सब्जियों एवं फलों की तुड़ाई तथा अन्य कृषि कार्यों के दौरान भारत सरकार द्वारा सुझाए गए दिशा निर्देशों, व्यक्तिगत स्वच्छता, मास्क का उपयोग, साबुन से उचित अंतराल पर हाथ धोना तथा एक दूसरे से सामाजिक दूरी बनाए रखने पर विशेष ध्यान दें।

अब हमें निश्चित रूप से पारंपरीक खेती से हटकर सोचना होगा। प्रतिदिन के लिए नियमित आमदनी का जरिया खोजने का प्रयास करना होगा। इसके लिये हमें नई जानकारी, नई तकनीक सूचना क्रान्ति एवं बाजार पर ध्यान देना होगा। साथ ही किसान भाइयों को आज 'किसान उत्पादक संगठन' बनाकर संगठित होने की जरूरत है क्योंकि सरकार द्वारा किसान संगठन सशक्तिकरण के लिए लगातार प्रयास किए जा रहे है।

हमारे संस्थान ने देश के विभिन्न क्षेत्रों के लिए बहुत सी फसलों की उन्नत प्रजातियाँ विकसित की हैं। सभी किसानों के पास अपने क्षेत्रों के अनुकुल बहुत से विकल्प उपलब्ध हैं। जिसका वह चुनाव समय के अनुसार वह खुद कर सकते हैं। किसानों को यह भी सलाह दी जाती है कि वह अपने खेत पर फसलों का विविधीकरण अपनाएं जिससे बाजार का जोखिम कम से कम किया जा सके। खेत में लगने वाली फसलों की योजना इस प्रकार बनाएँ कि इसमें सभी प्रकार की फसलों, सब्जियों एवं पशु चारे का समावेश हो, जिससे कम क्षेत्र में अधिक लाभ हो।

प्रसार दूत के इस अंक में रबी मौसम को ध्यान में रखते हुए समसामयिक फसलों से संबन्धित आलेखों को शामिल किया है।

संपादक

सितम्बर 2021

प्रसार दूत

वर्ष 26 | 2021 | अंक-3

संरक्षक

डॉ. अशोक कुमार सिंह

निदेशक

डॉ. बी.एस. तोमर

कार्यवाहक संयुक्त निदेशक (प्रसार)

प्रधान सम्पादक

डॉ. जे.पी.एस. डबास

सम्पादक

डॉ. एन.वी कुंभारे

सम्पादक मंडल

डॉ. राजीव कुमार सिंह

डॉ. गोगराज सिंह जाट

श्री के. एस. यादव

डॉ. हरीश कुमार

डॉ. वाई. पी. सिंह

श्री आनन्द विजय दुबे

तकनीकी सहयोग

श्री विजय सिंह जाटव

श्री लक्खी राम मीणा

श्री राजेश सिंह

शुल्क और लेख भेजने एवं पत्रिका मंगाने का पता

कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)

भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान

नई दिल्ली–110012

फोनः 011–25841039

पूसा एग्रीकॉमः 1800118989 (टोल फ्री)

ई–मेंलः incharge_atic@iari.res.in

वेबसाइटः www.iari.res.in

विषय सूची | पृष्ठ संख्या

सम्पादकीय

1. अधिक आय का स्रोत है शीतकालीन सब्जियों की उन्नत खेती 1
2. फसल अवशेषों का वैकल्पिक प्रबंधन 7
3. किसानों की आय दोगुनी करने के लिए सरंक्षण कृषि एक व्यावहारिक विकल्प 14
4. फलवृक्षों में वर्षा ऋतु के उपरान्त होने वाले समसामयिक कार्यों का प्रबंधन 20
5. मृदा उर्वरता एवं सिंचाई जल प्रबंधन 22
6. संरक्षित खेती में सूत्रकृमि एवं सूक्ष्म जीवों के पारस्परिक संबंधः एक जटिल समस्या 28
7. मेन्थॉल मिन्ट की उन्नत खेती में टपक सिंचाई का महत्व 32
8. महिलाएं आत्मनिर्भर कैसे हों? 35
9. शीत कालीन ऋतु में मधुमक्खी पालन प्रबंधन 37
10. फॉल आर्मीवॉर्म – एक अनिष्ट आगंतुक कीट व इसका प्रबंधन 42
11. किसानों की आय बढ़ाने हेतु पूसा की उन्नत रबी फसलों की किस्में 44
12. गन्ना उत्पादन वृद्धि हेतु उन्नत शस्य तकनीक एवं अन्तः फसली खेती 46
13. फलों की बागवानी से समन्बिधत सामान्य प्रश्न 50

वार्षिक शुल्क ₹ 80/– मनीआर्डर द्वारा | **एक प्रति मूल्य ₹ 20/–**

अधिक आय का स्रोत है शीतकालीन सब्जियों की उन्नत खेती

श्रवण सिंह सिरोवा, बृज बिहारी शर्मा और गोगराज सिंह जाट
भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली110012

भारत में लगभग 10.2 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्रफल में विभिन्न प्रकार की सब्जियों की खेती की जाती है जिसका सकल उत्पादन 184.3 मिलियन टन है। ये कम समय में अधिक आमदनी देने वाली फसलें है। ये उत्पादकता मूल्य के आधार पर अन्य फसल समूहों से उत्तम फसलें है । प्रति इकाई भूमि और उत्पादन लागत की दृष्टि से सब्जियों की खेती उत्तम कृषिगत प्रक्रमों में से एक है। सब्जियों की आवक के साथ–साथ खपत भी बढ़ रही है। खासकर शीतकाल में बाजार में भिन्न–भिन्न प्रकार की सब्जियों को देखा जा सकता है। यह लोगों की स्वास्थ्य के प्रति जागरूकता बढ़ने और सब्जियों के पोषण महत्व की देन है। सब्जियों में शरीर के लिए आवश्यक पौषक तत्व जैसे की खनिज–लवण, विटामिन, एमिनो एसिड्स आदि तो होते ही है साथ ही ये स्वास्थ्य–प्रद जैव–रसायनों की भी उत्तम स्रोत है। इसलिए 300 ग्राम सब्जियाँ (100 पत्तेदार, 100 जड़ या आलू और 100 ग्राम अन्य) प्रतिदिन प्रति वयस्क व्यक्ति के संतुलित भोजन में सम्मिलित होनी चाहिए। वैसे तो भारत में जलवायु विभिन्नता बहुत है जो कि सब्जियों की एक या अन्य क्षेत्रों में वर्ष–भर खेती के उपयुक्त है लेकिन इनके उत्पादन के उपयुक्त जलवायु के आधार पर सब्जियों को शीतकालीन और ग्रीष्मकालीन कहा जाता है। इनमें समूह–वार प्रमुख शीतकालीन सब्जी फसलें नीचे चार्ट में दिखाई गई है :

1. उन्नत किस्में और संकर प्रजातियाँ

इस लेख में महत्वपूर्ण शीतकालीन सब्जी फसलों की पूसा संस्थान द्वारा विकसित महत्वपूर्ण उन्नत किस्मों और संकर प्रजातियों के बारे में फसल–वार जानकारी नीचे दी गई है । साथ ही सार्वजनिक संस्थानों से विकसित किस्मों का भी विवरण दिया है ।

गोभी वर्गीय सब्जियाँ

- **फूलगोभी:** पूसा शरद, पूसा हाइब्रिड–2 (मध्य–अगेती), पूसा पौषजा, पूसा शुक्ति (मध्य–पछेती), पूसा स्नोबॉल –16, पूसा स्नोबॉल के–1, पूसा स्नोबॉल के.टी.–25, पूसा स्नोबॉल हाईब्रिड–1 (पछेती)

शीतकालीन सब्जी फसलें

गोभी वर्गीय सब्जियाँ	जड़दार सब्जियों	कंद सब्जियाँ	टमाटर वर्गीय	दलहनी सब्जियाँ	पत्तेदार सब्जियाँ
फूलगोभी	गाजर	प्याज	टमाटर	मटर	सलाद पत्ता (लेटुस)
पत्ता गोभी	मूली	लहसुन	मिर्ची	बाकला	साग सरसों
ब्रोकोली	चुकंदर		आलू		पालक
गांठ गोभी	शलजम				विलायती पालक
ब्रुसेल्स स्प्राउट्स					केल
					सेलरी
					पार्सले
					मेथी
					धनिया

- **पत्ता गोभीः** गोल्डन एकड़, पूसा मुक्ता (काला सड़न से रोधी), पूसा कैबेज हाइब्रिड –1, पूसा ड्रमहेड (बड़े आकर के हेड)
- **गांठ गोभीः** वाइट विएना, पर्पल विएना, पालम टेंडर नॉब, पूसा विराट (बड़े अक्कर की नॉब्स)
- **ब्रोकोलीः** पालम समृद्धि, पूसा के टी स –1, पालम विचित्र (बैंगनी), पालम हरितिका (हल्की हरी), पालम कंचन (हल्की पीली)

जड़दार सब्जियों की किस्में

- **गाजरः** अगेती फसल के लिए – पूसा वृष्टि (लाल रंग, जड़ें मध्यम आकर की), मुख्य फसल के लिए – पूसा रुधिरा (लाल, जड़ें 25–30 सेंटी मीटर लम्बाई में), पूसा असिता (काली, 25–35 सेंटी मीटर लम्बी जड़ें), पूसा मेघाली (जड़ें नारंगी और 20–25 सेंटी मीटर लम्बी); संतरी गाजर की किस्मेंः पूसा नयनज्योति, नेंटीस, पूसा यमदागिनी
- **मूलीः** पूसा चेतकी (अगेती फसल के लिए उपयुक्त, 45 दिन में तैयार), जापानीज वाइट (20 – 25 सेंटी मीटर, हल्की तीखी, 55–60 दिन में तैयार, अक्टूबर बुवाई के लिए), पूसा रेशमी (30–35 सेंटी मीटर लम्बी, 55–60 दिन में तैयार, जड़ें सफ़ेद हल्का हरा सिरा, अक्टूबर–नवंबर बुवाई के लिए), पूसा हिमानी (30–35 सेंटी मीटर, सफ़ेद, 50–55 दिन में तैयार, फरवरी मध्य तक बुवाई के लिए)
- **चुकंदरः** डेट्रॉइट डार्क रेड (पत्तियाँ छोटी, फसल अवधि 80–100 दिन, जड़ें गोल, गहरे लाल रंग की, सलाद के लिए उपयुक्त), क्रिमसन ग्लोब (पत्तियाँ मैरून लाल रंग की मध्यम से बड़े आकर की, पत्तियाँ चमकीली लाल, 90–95 दिन, जड़े चपटी गोलाकार, मध्यम लाल, जड़ें धारी रहित लाल, सलाद, कैनिंग और अचार आदि के लिए उपयुक्त)
- शलजमः पूसा टॉप वाइट ग्लोब (जड़ों का ऊपरी भाग लाल और निचे सफ़ेद), अर्ली मिलान रेड टॉप (जड़ें चपटी, बैंगनी लाल ऊपरी भाग में और निचे का भाग सफ़ेद), पूसा स्वर्णिम (चपटी गोल आकर की, क्रीम पीली रंग की जड़ें, 65–70 दिन में तैयार), पूसा चंद्रिमा (जड़ें पूरी सफ़ेद, गोल, 8–9 सेंटी मीटर आकार की, 50–55 डेज में तैयार), पूसा स्वेति (जड़ें सफ़ेद, मध्यम आकर की, हल्की चपटी, तीखी, 40–50 दिन में तैयार)

प्याज समूह की सब्जियाँ

- **प्याजः** पूसा रिद्धी (बल्ब का वजन 70–100 ग्राम, उपज 30 टन प्रति हेक्टेयर), पूसा रेड, पूसा माधवी, पूसा शोभा (निर्यात योग्य क़िस्म), अर्का विश्वास, अर्का उज्जल, अर्का स्वादिष्ठा, अर्का पीताम्बर, एग्रीफाउंड लाल, भीमा रेड, भीमा लाइट रेड, भीमा किरण, भीमा श्वेता
- **लहसुनः** एग्रीफाउंड सफेद, एग्रीफाउंड पार्वती, यमुना सफेद–1, पंत लोहित, भीम ओंकार, भीम बैंगनी
- स्प्रिंग ओनियनः पूसा सौम्या (हरी पत्ते वाली प्याज, वर्ष भर पत्तों की कटाई के लिए उपयुक्त, बीमारियों और कीड़ों का प्रकोप बहुत कम)

सोलेनसियस या टमाटर वर्गीय सब्जियाँ

- **मिर्चः** पूसा सदाबहार (8 –10 टन प्रति हेक्टेयर पैदावार, मध्यम आकर के फल ऊपर की और गुच्छे में)
- टमाटरः पूसा रोहिणी, पूसा हाइब्रिड–1, पूसा हाइब्रिड –2, पूसा हाइब्रिड–4, पूसा हाइब्रिड–8

दलहनी समूह की सब्जियाँ

- **मटरः** पूसा प्रबल (चूर्णिल आसिता एवं फ्यूजेरियम विल्ट) से रोधी, बुआई के 80–85 दिनों बाद प्रथम तुड़ाई के लिए तैयार, फलियाँ गहरे हरे रंग की, 7–9 बीज प्रति फली, औसत उपज 100–130 क्विंटल प्रति हैक्टर), पूसा श्री (अक्टूबर मध्य में बुवाई, उपज 40–50 कुन्तल प्रति हेक्टेयर परिपक्वता 50–60 दिन में)। अगेतीः पूसा श्री, पूसा प्रगति, पूसा अग्रणी, काशी नंदिनी, काशी मुक्ति, अर्केल, हिसार हरित, पन्त मटर–2; पछेतीः बोन्नेविल्ले, लिंकन, पन्त उपहार; और फली सहितः मीठी फली, जे.पी.–19, यू. एन.–53।
- **ब्रॉड बीनः** पूसा उदित (फलियाँ अधिक लम्बी, हल्की

फ्लैट, और हल्की हरी, पैकेजिंग और ट्रांसपोर्ट के लिए उपयुक्त)

पत्तेदार सब्जियाँ

- **पालकः** आल ग्रीन (पत्तियाँ हरी, 12.5 टन प्रति हेक्टेयर पैदावार, सितम्बर में बुवाई के उपयुक्त), पूसा ज्योति (पत्तियाँ मोटी, गहरी हरी, हल्की झालरदार, सितम्बर बुवाई के लिए, 42.5 टन प्रति हेक्टेयर पैदावार), पूसा भारती (पत्तियाँ चिकनी, हरी, सर्दियों में बुवाई के लिए उपयुक्त, उपज 50 टन प्रति हेक्टेयर), पूसा हरित (मोटी और बड़ी पत्तियाँ, कटाई के उपरांत तुरंत वर्धी, बोल्टिंग देरी से, पछेती फसल के लिए उपयुक्त, उपज 50.0 टन प्रति हेक्टेयर)
- **बथुआः** पूसा बथुआ –१ (पत्ते हल्के बैंगनी रंग के, कई बार कटाई के लिए उपयुक्त), पूसा ग्रीन (बथुआ सिलेक्शन–2) (चौड़ी और गहरे हरी पत्तियाँ कई बार कटाई के लिए उपयुक्त, औसत उपज 36.8 टन प्रति हेक्टेयर.
- **सलाद पत्ता (लेटुस):** ग्रेट लेक्स, आइसबर्ग, चाइनीस येलो, ऑल सीजन

2. बीज और पौध तैयारी

शीतकालीन सब्जियों के लिए बीज की आवश्यक मात्रा सारणी –1 में दी गई है। बीज हमेशा विश्वसनीय स्रोत से ही ख़रीदें और साथ ही उसके सम्बन्ध में पूरी जानकारी भी ले लें। यह बात खासकर फूल गोभी, पत्ता गोभी, ब्रोकोली और मटर आदि। सभी गोभी वर्गीय सब्जियाँ, प्याज, टमाटर, लेटुस, सेलेरी, पार्सले, बथुआ आदि को पौध रोपण विधि द्वारा लगाया जाता है। उत्तम पौध तैयार करने के लिए विशेष ध्यान रखना होता है । इसके लिए मृदा–जनित बीमारियों और कीड़ों से मुक्त प्राय, ऊंची उठी हुई और सूर्य की उपयुक्त रौशनी वाली जगह का चुनाव करें। पौधशाला तैयारी के लिए भूमि में पूर्णतः सड़ी गोबर खाद (150 किलो/100 वर्ग मीटर) में बुवाई के एक माह पूर्व मिलायें और 3–4 बार जुताई करें। भूमि में उपयुक्त नमी बनाये रखें जिससे खाद की गर्मी मिट जायें और सतह पर खरपतवारों के बीज उग जाते हैं जिन्हें जुताई के समय नष्ट किया जा सके। अंतिम जुताई के तुरंत बाद 3–5 मीटर लम्बी, 45 सेंटीमीटर से 1.0 मीटर चौड़ी और 15–20 सेंटीमीटर उठी हुई क्यारियाँ बनायें । क्यारियाँ को बाविस्टिन या कैपटान (2 ग्राम/लीटर पानी) से तर करें या ट्राइकोडर्मा से समृद्ध 1 किलो गोबर खाद प्रति बैड में मिलाएं। बैड सतह को भुरभुरा बनाये और 5–7 सेंटीमीटर की दूरी पर 1–1.5 इंच गहरी पंक्तियाँ बनाये। इन पंक्तियों में बाविस्टिन (२ ग्रा या ट्राइकोडर्मा 5 ग्राम/किलो बीज) से उपचारित बीज को बोयें। बुवाई के बाद पंक्तियों को मिट्टी से बंद करें सुखी घास से ढकें और नियमित हलकी सिंचाई करें। अंकुरण के तुरंत बाद घास को हटाएँ । प्रतिदिन सुबह या सांयकाल में सिचांई करें और साप्ताहिक अंतराल पर हल्की निराई–गुड़ाई करें। पौध लगभग 25–35 दिन में रोपाई के लिए तैयार हो जाती है।

आजकल प्रो–ट्रे में नर्सरी बनाने का प्रचलन बढ़ रहा है। इसके लिए 1 और 1.5 इंच कोष वाली ट्रे में कोकोपीट, वरमीक्यूलाइट और परलाइट को 3:1:1 (भार अनुसार) अनुपात में मिलाकर भरें। प्रत्येक कोष में एक बीज बोये और उचित नमी बांये रखें। पौषक तत्वों के लिए नुरारी ग्रेड के रासायनिक उर्वरकों को प्रारम्भिक अवस्था में 70 पीपीएम तथा बाद में 140 पीपीएम प्रति सप्ताह की दर से दिया जाता है। प्रो–ट्रे में पौध की जड़ें अच्छी बनती है और पौध की प्राप्ति अधिक होती है।

3. खेत की तैयारी

सब्जियों की अधिक पैदावार के लिए खेत की तैयारी के लिए विशेष सावधानियों की जरुरत होती है। सब्जियों के खेती में हरी खाद का विशेष महत्व है। इसके लिए बुवाई या रोपाई के लगभग 45–60 दिन पूर्व खेत में पलेवा करें और पहली जुताई के समय ढैंचे का बीज (40–50 किलो/हेक्टेयर) छिड़के और समय–समय पर पानी लगाते रहे। लगभग 40–45 दिन की अवस्था में ढैंचे को जमीन में मिलाएं। जहाँ यह हरी खाद संभव नहीं हो वहाँ बुवाई/रोपाई के 25–30 दिन पूर्व पलेवा के बाद पूरी तरह सड़ी हुई गोबर की खाद की संतुलित मात्रा मिलाकर जुताई करें। इसके 10–15 दिन बाद पलेवा करें और दूसरी जुताई करें। इसके 7–10 दिन बाद संस्तुतित मात्रा में नत्रजन,

पोटाश और फॉस्फोरस को मिलाएं और जुताई करें । रिज मेकर से उचित दुरी पर मेडियां बनायें। प्रमुख शीतकालीन सब्जियों के लिए पौधे से पौधे और पंक्तियों से पंक्तियों के बीच की दूरी सारणी–1 में दी गई है।

4. खाद व उर्वरक का प्रबंधनः

सब्जियों से अधिक आय के लिए अधिक पैदावार के साथ–साथ उत्तम गुणवत्ता बनाये रखना भी जरुरी है। इसलिए भूमि में उर्वरकों का उचित संतुलन बनाये रखने के लिए मिट्टीऔर पानी की जाँच अवश्य करवाएं। जाँच रिपोर्ट के आधार पर खाद व उर्वरकों की मात्रा का निर्धारण फसल के विशेषज्ञों से बात कर करनी चाहिए। कच्ची गोबर की खाद का प्रयोग सब्जियों की खेती के लिए कभी नहीं करना चाहिए क्योंकि इसके सड़ने की प्रक्रिया से ऊष्मा निकली है जो पौधों की जड़ों को नुकसान पहुँचाती है साथ ही कच्ची खाद दीमक को आमंत्रित करती है। सामान्यत सन्तुलित फसल–वार खाद व उर्वरक की मात्रा सारणी–2 में दी गयी है। यह मात्रा किस्मों और उत्पादन क्षेत्र के अनुसार परिवर्तित भी हो सकती है। मिट्टी जाँच में पी. एच. मान का विशेष ध्यान रखें।

5. जल निकास सिचाई प्रबंधनः

सब्जी फसलों में अधिक सूखा या अधिक नमी दोनों ही पैदावार और बाजार गुणवत्ता के लिए हानिकारक है इसलिए उचित नमी बनाये रखना आवश्यक है। इसके लिए फसलवार सन्तुलित अंतराल पर सिंचाई करनी चाहिये। हालाँकि यह अंतराल फसल की अवस्था, भूमि के प्रकार और वातावरणीय कारकों से भी प्रभावित होता है इसलिए समय–समय पर जारी कृषि संस्थानों /परामर्श केन्द्रो द्वारा जारी कृषि–सलाह को ध्यान में रखें। खेत में जल भराव हो तो तुरंत जल निकास की व्यवस्था करनी चाहिये। आजकल बूँद–बूँद सिंचाई प्रणाली और स्प्रिंकलर सिंचाई का उपयोग सब्जियों में भी बढ़ रहा है इससे पानी की बचत होती है और पैदावार भी बढ़ती है। साथ ही कुछ नमी रक्षित करने वाले कृषि – पॉलीमर्स (जैसे की पूसा हाइड्रो जेल, एसपीजी 1118 की 2.5 किलो प्रति हेक्टेयर बीज उपचार या मिट्टी में मिलाने के लिये) का भी उपयोग सब्जियों में नमी सरंक्षण के लिए उपयुक्त पाया है।

6. खरपतवार नियंत्रणः

रबी मौसम की फसलों की अच्छी बढ़वार के लिए प्रारम्भिक अवस्था में खरपतवार नियंत्रण अत्यधिक आवश्यक है क्यों कि फसल की अच्छी बढ़वार की अवस्था में खरपतवार कम हो जाते हैं। खरपतवार इन फसलों से पानी, प्रकाश एवं पोषक तत्वों के लिए प्रतियोगिता करते है तथा कीट व बीमारियों को शरण देते हैं जिससे फसलों की उपज को 20–80 प्रतिशत तक कम कर देते हैं। खरपतवार सब्जी फसलों में प्रारम्भिक एक तिहाई फ़ासलावधि (3–8 सप्ताह) तक अधिक नुकसान पहुचाते हैं। हालाँकि पत्तेदार सब्जियों में इनकी उपस्थिति बाजार भाव को भी कम कर देते हैं। इनके नियन्त्रण के लिए पेन्डीमिथेलीन (30 ई.सी) 400 मि.ली. की मात्रा प्रति एकड को 200 ली. पानी में रोपाई से पहले छिड़काव करें। पहली दो सिंचाई के बाद में हल्की निराई गुडाई करनी चाहिए। कम अवधि (30–45 दिन) की सब्जी फसलों के लिए एक गुड़ाई पर्याप्त है लेकिन मध्यम (80–90 दिन) और लम्बी (90 से 150 दिन) अवधि की फसलों के लिए 2 से 4 गुड़ाई करनी पड़ सकती है।

7. कटाई और तुड़ाई

रबी मौसम में उगाई जान वली सब्जियों की तुड़ाई/कटाई/खुदाई अलग अलग अवस्थाओं में की जाती है। पत्तागोभी में जब हेड सामान्य आकार का तथा फूलगोभी व ब्रोकोली में कर्ड सामान्य आकार का हो जाने पर इनकी कटाई करते हैं। मूली की खुदाई बुवाई के लगभग तीसरे सप्ताह बाद शुरू की जा सकती है। चुकंदर की खुदाई बुवाई के नौ सप्ताह बाद जबकी गाजर में बुवाई के तीन से चार महीने बाद खुदाई की जाती है। शलजम में जब कंद 5–10 से.मी. व्यास के हो जायें तब इनकी खुदाई करनी चाहिए। प्याज की खुदाई जब 50 प्रतिशत डंठल जमीन की ओर मुड़ जायें तब करनी चाहिए जबकी लहसुन में पत्तिया पीली पड़ने लगें व सूखने लगें तब यह कार्य आरम्भ करना चाहिए। मटर में जब गहरी हरे रंग की फलियाँ हरी होने लगे तब फलियोँ की तुड़ाई आरम्भ करनी चाहिए। राजमा में जब फलियाँ हलके भूरे रंग की हो जायें इनकी तुड़ाई कर लेनी चाहिए। पालक की कटाई जब पत्तिया पूर्ण

आकर की हरी व कोमल अवस्था में हो जायें आरम्भ करनी चाहिए। मेथी की पहली कटाई 25–30 दिन बाद कर लेनी चाहिए जबकि सलाद की पत्तियाँ आवश्यक आकार की हो जाऐं तब इनकी तुड़ाई करनी चाहिए।

8. शीतकालीन सब्जियों मे प्रमुख रोग एवं कीट प्रवंधन

सामान्यतया, शीतकालीन सब्जियों में कीटों का प्रकोप कम देखने को मिलता है लेकिन किसी–किसी क्षेत्रों में इनकी समस्या से काफी आर्थिक नुकसान भी होता है । इसलिए खेत में साफ–सफाई रखें और समय रहते समन्वित कीट प्रबंधन की गतिविधियों को अपनायें। फसलवार प्रमुख कीड़े और रोग–व्याधियों का प्रबंधन तालिका–3 में दिए है।

शीतकालीन सब्जियों के उत्पादन के लिए विशेष सलाह :

- सब्जियों की खेती के लिए मिट्टी और पानी की जाँच अवश्य करवाएँ।
- पाला पड़ने की संभावना होने पर मटर, टमाटर और मिर्ची में सिंचाई अवश्य करें।
- किस्म चयन के समय रोग रोधी किस्मों को प्राथमिकता दे।
- सब्जियों की कटाई या तुड़ाई कीटनाशकों या अन्य रसायनों की सन्तुलित 'प्रतीक्षा काल' के बाद ही करें।
- फूलगोभी में किस्मों का चुनाव उनके लगाने के सही समय अनुसार ही करें।
- जड़दार सब्जियों के लिए खेत में कच्ची और ताजा गोबर की खाद ना डालें।
- बुवाई से पहले लहसुन की कलियों का बाविस्टिन 2 ग्राम प्रति किलो की दर से उपचारित करें।
- विशेषकर प्याज और लहसून में कीटनाशकों के प्रयोग के समय स्टीकर (5 मिलीलीटर/15 लीटर) अवश्य मिलाएं।
- स्वस्थ सब्जी उत्पादन हेतु क्लीन कल्टीवेशन अपनायें।
- बीमार और गिरे हुए पुराने पत्तों या फसल अवशेषों को खेत के एक किनारे पर गड्ढे में दबाएं।
- ब्रोकोली की कटाई कलिकाओं के खिलने से पहले ही करें।
- पत्तेदार सब्जियों की कटाई सतह से 3–5 सेंटीमीटर ऊपर से करें।
- किसी भी समस्या के निवारण हेतु निकटतम कृषि विज्ञान केंद्र, कृषि विशेषज्ञ या प्रसार सलाहकार से सम्पर्क करें।
- जड़दार फसलों में पानी का इस्तेमाल संयमित रूप से करें अन्यथा जड़–फटन और गलन की समस्या आती है।
- विलायती या संतरी गाजर में कैल्सियम की कमी के कारण कैविटी स्पॉट्स (काले गड्ढे) बन जाते है इसलिए बुवाई से पहले कैल्सियम (बुझा चुना 300–500 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर) या नत्रजन के लिए कैल्शियम अमोनियम नाइट्रेट का उपयोग करें।

सारणी –1 : शीतकालीन सब्जियों के लिए बीज दर, दुरी और पैदावार

फसल	बुवाईका समय	बीज दर प्रति एकड़ (ग्राम)	पंक्ति से पंक्ति दूरी (से. मी.)	पौध से पौध दूरी (से.मी.)	बुवाई की गहराई (से. मी.)	उपज (क्वि.प्रति एकड़)
फूल गोभी	अगस्त – नवम्बर	150 –180 ग्रा.	45	45	1.0	70–80
पत्ता गोभी	अगस्त – नवम्बर	160– 200 ग्रा.	45	45	10	100–150
ब्रोकोली	सितम्बर– अक्टूबर	140–150 ग्रा.	60	45	1.0	60–80
गांठ गोभी	सितम्बर– अक्टूबर	400–600 ग्रा.	25	25	1.0	80–100
ब्रुसेल्स स्प्राउट्स	अक्टूबर	200 ग्रा.	60	45	1.0	40–60

गाजर	सितम्बर– नवम्बर	2.0–2.5 किग्रा	30	15	1.0	120–150
मूली	सितम्बर– जनवरी	3.5–4.0 किग्रा	30	10	1.0	60–120
चुकंदर	अक्टूबर – नवम्बर	4–5 कि.ग्रा.	40	8	3–4	100–120
शलजम	सितम्बर– नवम्बर	2.5–3.0 कि.ग्रा.	30	10–15	1.0–1.5	80–120
मटर	अक्टूबर – नवम्बर	35–40 कि.ग्रा.	40	10	3–4	30–40
ब्रॉड बीन	नवम्बर	400–600 ग्रा.	45	45	1.0–1.5	45–50
टमाटर	नवम्बर – दिसम्बर	120–160 ग्रा. 60–65 ग्रा.(संकर)	60	45	1.0	80–100 200–220
मिर्ची	नवम्बर – दिसम्बर	400–600 ग्रा. 100 ग्रा. (संकर)	45–60	30–45	1.0	40–60
प्याज	नवम्बर – दिसम्बर	3.5–4.0 कि.ग्रा.	15	10	1–1.5	120–150
लहसुन	सितम्बर	200 कि.ग्रा.	15	10	1–1.5	50–60
सलाद पत्ता (लेटुस)	अक्टूबर	150–200 ग्रा.	45	30	1.0	60–80
पालक	सितम्बर– नवम्बर	12 कि.ग्रा.	30	5	1–2	150–200
मेथी	सितम्बर– नवम्बर	10–12 कि.ग्रा.	30	2–3	2–3	50–60

फसल अवशेषों का वैकल्पिक प्रबंधन

शांति देवी बम्बोरिया*, बाबू लाल धायल** एवं सुमित्रा देवी बम्बोरिया***
* भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली– 110012
**हिसार कृषि विश्वविद्यालय, हिसार,– 125004 (हरियाणा)
***कृषि विज्ञानं केंद्र मोलासर– 341506 (राजस्थान)

भारत में विभिन्न फसलों के उगने से प्रतिवर्ष लगभग 683 मिलियन टन फसल अवशेषों का उत्पादन किया जाता है, जिसका एक बड़ा हिस्सा चारे, ईंधन और विभिन्न औद्योगिक प्रक्रियाओं में उपयोग किया जाता है। इसके बावजूद लगभग 178 मिलियन टन अधिशेष फसल अवशेष देश भर में उपलब्ध रहता हैं। अनुमानित 87 मिलियन टन अधिशेष फसल अवशेष विभिन्न फसल भूमि में जला दिए जाते हैं। यह विडंबना ही है कि एक ओर जहां हमारे पास पशुओं के चारे, जैव ईंधन और खाद की कमी है, वहीं दूसरी ओर काफी मात्रा में फसल अवशेष या तो बर्बाद हो जाता है या जला दिया जाता है। यह न केवल प्राकृतिक नवीकरणीय संसाधनों का एक बड़ा नुकसान है, बल्कि ग्रीनहाउस गैस (जीएचजी) उत्सर्जन और पर्यावरण प्रदूषण का भी एक स्रोत है। फसल अवशेष दहन से हर साल सर्दियों की शुरुआत के दौरान उत्तरी भारत में बड़े पैमाने पर प्रदूषण होता है। दिल्ली और आसपास के क्षेत्रों में कम हवा के साथ तापमान में गिरावट के कारण प्रदूषण का प्रभाव और तेज हो जाता है। दिल्ली में विशेषकर नवंबर के पहले 10 दिनों के दौरान पीएम 10 की सघनता में 30 प्रतिशत से 35 प्रतिशत योगदान फसल अवशेष दहन का रहता है। चावल, गेहूं, गन्ना, मक्का, कपास, सोयाबीन एवं सरसों के फसल अवशेष मुख्य रूप से जलाये जाते हैं। भारत में वार्षिक रूप से फसल अवशेषों को जलाने से लगभग 627 किलो टन पी.एम. 10 और 4677 किलो टन कार्बन मोनोऑक्साइड वायुमंडल में उत्सर्जित होते हैं। फसल अवशेष जलाने से सल्फर ऑक्साइड, नाइट्रोजन ऑक्साइड, अमोनिया और वाष्पशील कार्बनिक यौगिक भी निकलते है। विभिन्न फसल अवशेषों की वायु प्रदूषण उत्सर्जन तीव्रता भी भिन्न होती है। विभिन्न प्रकार के फसल अवशेषों के जलने से उत्सर्जित पी.एम 2.5 (ग्राम प्रति किलोग्राम) का क्रम इस प्रकार हैः गन्ना (12.0)> मक्का (11.2)> कपास (9.8)> चावल (9.3)> गेहूं (8.5)।

फसल अवशेषों के दहन के मुख्य कारण

धान के भूसे को खेत से हटाना श्रमसाध्य प्रक्रिया है। महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी अधिनियम (2006) ने व्यापक स्तर पर रोजगार देकर श्रम संकट को जन्म दिया अतः धीरे–धीरे किसानों को चावल की कटाई हेतु यांत्रिक विधियों को अपनाना पड़ा। यांत्रिक कटाई में भूसे को जमीन से 15 सेमी या इससे ज्यादा ऊंचाई से काटना पड़ता है अन्यथा चावल के दाने का नुकसान होता है। अतः कंबाइन हार्वेस्टर बड़ी मात्रा में खड़े एवं बिखरे हुए भूसे को खेत में छोड़ देता है जिसके कारण खेत गेहूं की फसल लगाने के लिए उपयुक्त नहीं रह पाता है। चावल की फसल की कटाई और गेहूं की बुवाई के बीच संकीर्ण समयरेखा भी किसानों को फसल जलाने के लिए मजबूर करता है। अधिशेष फसल अवशेष से किसानों को कोई आकर्षक मौद्रिक वापसी एवं फायदा नहीं मिल पाता है और फसल अवशेषों के संग्रह में काफी संख्या में श्रम लगती है अतः किसान खेत से अवशेषों को इकट्ठा करने में रूचि न लेकर यथास्थान जलाना ही ठीक समझते हैं।

फसल अवशेषों के दहन के दुष्परिणाम

फसल अवशेषों के दहन से ग्रीन हाउस गैसों, एरोसोल जैसे कार्बन मोनो ऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रोजन ऑक्साइड और अन्य हाइड्रोकार्बन का उत्सर्जन होता है। अवशेष जलाने पर चावल के भूसे में मौजूद कार्बन का 70 प्रतिशत हिस्सा कार्बन डाई ऑक्साइड, 7 प्रतिशत कार्बन मोनो ऑक्साइड और 0.66 प्रतिशत मीथेन के रूप में उत्सर्जित होता है जबकि नाइट्रोजन का 2.09 प्रतिशत हिस्सा नाइट्रस ऑक्साइड के रूप में उत्सर्जित होता है। साथ ही फसल अवशेष जलाने से बड़ी मात्रा में पार्टिकुलेट का भी उत्सर्जन

होता है। बायोमास धुएं में पाए जाने वाले कई प्रदूषक ज्ञात या संदिग्ध कार्सिनोजेन्स हैं और विभिन्न वायु जनित एवं फेफड़ों के रोगों को को जन्म दे सकते हैं। फसल अवशेषों को जलाने से विशेष रूप से उत्तर–पष्चिमी भारत में वायु गुणवत्ता पर भारी प्रभाव पड़ता हैं जिससे स्वास्थ्य संबंधी शिकायतें होती है, परिवहन माध्यम में व्यवधान आ जाती है एवं स्कूल बंद करनी पड़ जाती हैं। अतः फसल अवशेष दहन से देश की अर्थव्यवस्था पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

फसल अवशेष जलाने से मिट्टी के कार्बन और उर्वरता पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है एवं मृदा उत्पादकता में कमी हो जाती है। एक टन धान के भूसे को जलाने से अनुमानतः 5.5 किलोग्राम नाइट्रोजन, 2.3 किलोग्राम फॉस्फोरस, 25 किलोग्राम पोटेशियम और 1.2 किलोग्राम सल्फर एवं कार्बन की हानि होती है। अवशेषों को जलाने से निकलने वाली गर्मी मिट्टी के तापमान को बढ़ा देती है जिसके कारण लाभकारी मृदा जीवों की मृत्यु हो जाती है। बार–बार अवशेष जलने से सूक्ष्मजीव आबादी का पूर्ण नुकसान भी हो सकता है। फसल दहन से ऊपर की 0–15 सेमी भूमि में नाइट्रोजन एवं कार्बन के स्तर में कमी हो जाती है जिससे फसल के विकास पर नकारात्मक प्रभाव होता है। मिट्टी में बायोमास की वापसी न करने से मिट्टी की गुणवत्ता और दीर्घकालिक उत्पादकता पर गलत प्रभाव पड़ता है।

फसल अवशेषों के प्रबंधन के विभिन्न अवसर

1. अवशेषों का मिट्टी में समावेश

कंबाइन द्वारा कटाई के बाद मिट्टी पर फैले हुए भूसे को प्रतिवर्ती मोल्ड बोर्ड हल या रोटावेटर चलाकर खेत में मिला दिया जाता है। रोटावेटर कटी हुयी फसल के डंठल/ठूंठ को छोटे टुकड़ों में काट देता है और बचे हुए अवशेषों को मिट्टी में मिलाता है। इससे न केवल जुताई के संचालन में कम ऊर्जा की आवश्यकता होती है, बल्कि यह पिछली फसल के अवशेषों को भी मिट्टी में अच्छी तरह मिलाते हैं। फसल अवशेषों के मिट्टी में समावेशन से कार्बनिक पदार्थ एवं पोषक तत्व की मृदा में पुनरावर्ती होती है जिससे मृदा की उर्वरता बढ़ती है एवं इससे रासायनिक उर्वरकों की बचत होती है। अवशेष निगमन से मिट्टी की जल प्रतिधारण क्षमता बढ़ती है और मिट्टी की भौतिक और रासायनिक स्थिति में सुधार होता है। फसल अवशेषों को मृदा में मिलाने की यह प्रथा अवशेषों के दहन को रोककर जीएचजी उत्सर्जन और वायु प्रदूषण को कम करती है। अवशेषों के आसानी से अपघटन के लिए खेत में नाइट्रोजन डालकर सिंचाई करनी चाहिए। भूसे के समावेष से आगामी फसल की बुवाई में 2–3 सप्ताह की देरी हो जाती है और अवशेषों के शीघ्र अपघटन के लिए अतिरिक्त सिंचाई और नाइट्रोजन की आवश्यकता है जो उत्पादन लागत में बढ़ोतरी करते है।

2. फसल अवशेषों का मिट्टी की सतह पर प्रतिधारण

जीरो टिल खेती में जुताई प्रतिबन्धित रहती है जिससे यह मृदा सतह पर अवशेष प्रतिधारण की अनुमति देती हैं। कम्बाइन द्वारा फसलों की कटाई के बाद उनके अवशेषों को खेत में गुच्छो के रूप में छोड़ दिया जाता है। जीरो टिल ड्रिल और हैप्पी सीडर इत्यादि उपकरण इन बिखरे हुए अवशेषों में आगामी फसल की बुआई कर देते हैं। फसल अवशेष का मिट्टी पर प्रतिधारण हवा और वर्षा के कटाव से मिट्टी को सुरक्षा प्रदान करता है, कार्बनिक पदार्थ की मात्रा बढ़ाते हैं, नमी संरक्षित करते हैं और मिट्टी में पानी के प्रवेश और वातन को बढ़ाते हैं। इसके अतिरिक्त फसल अवशेष मिट्टी की संरचना में सुधार करते हैं, वाष्पीकरण को कम करते हैं और मिट्टी में कार्बन डाई ऑक्साइड की मात्रा को ठीक करने में मदद करते हैं।

जीरो टिल ड्रिल

3. पशुओं के लिए चारा

कृषि तथा पशुपालन एक दूसरे के पूरक है। प्राचीन काल से ही कृषि से प्राप्त होने वाले अवशेषों (भूसे) को

पशुओं हेतु चारे के उपयोग में लिया जाता आ रहा है। कृषि योग्य भूमि और चरागाह संसाधनों में कमी के साथ, फसल अवशेष पशुओं के चारे का एक महत्वपूर्ण घटक बनते जा रहे हैं। भारत में जुगाली करने वाले पशु अपनी अधिकांश ऊर्जा जरूरतें फसल अवशेषों से प्राप्त करते हैं। भूसे के अलावा कपास के डंठल, पत्ते और कच्चे बीजकोषों, गन्ने के अवशेष, मूंगफली और मटर का छिलका, दालों की खाली फली, मक्का का छिलका आदि का उपयोग भी पशुओं को खिलाने के लिए किया जाता है। दलहनों का भूसा अधिक पौष्टिक, स्वादिष्ट (अरहर, दाल और चना को छोड़कर) और सुपाच्य प्रोटीन का काफी अच्छा स्रोत है। आदर्श रूप से सूखे चारे में 8–10 प्रतिशत प्रोटीन होनी चाहिए, लेकिन अनाज के भूसे में सामान्यतः प्रोटीन अपर्याप्त मात्रा में पायी जाती है (तालिका 1)। प्रोटीन के अलावा भी अनाजीय फसलों से प्राप्त भूसा, दलहनी तथा तिलहनी फसलों से प्राप्त भूसे से मेटाबोलाइट ऊर्जा, विटामिन और खनिज में भी कम होता है तथा इसकी पाचन क्षमता (45 से 50 प्रतिशत) और सेवन दर (2 प्रतिशत) भी कम होती है। अतः नाइट्रोजन या प्रोटीन युक्त पदार्थ मिलाकर इस भूसे की गुणवत्ता को सुधारना आवश्यक है। गेंहू का भूसा 4–6 रूपये प्रति किग्रा के हिसाब से बिकता है अतः इन फसल अवशेषों को आसपास के चारा समस्या वाले क्षेत्रों में बेचकर अतिरिक्त आय प्राप्त की जा सकती है।

तालिका 1: फसल के भूसे का खाद्य मूल्य

फसल अवशेष	प्रोटीन (प्रतिशत)	रेशें (प्रतिशत)	मेटाबोलाइजे. बल ऊर्जा (मेगा कैलोरी/किग्रा)
गेंहूँ	3	35.2	1.4
जौ	4	47.4	1.7
धान	4.6	42.2	1.4
मक्का	5	35.0	–
ज्वार	5.67	38.9	–
मूंगफली	15	27.6	1.9
अरहर	10.7	36.2	1.5
चना	10.1	28.8	1.7

प्रोटीन की अपर्याप्तता तथा लिग्निन एवं सिलिकॉन (चावल में) की प्रचूरता भूसे को अपौष्टिक एवं अपाच्य बनाती है। अतः यूरिया, अमोनिया, सोडियम हाइड्रॉक्साइड जैसे क्षारीय पदार्थो द्वारा रासायनिक उपचार करके भूसे की पाचनशक्ति और गुणवत्ता को सुधारा जा सकता है। ये पदार्थ लिग्निन, हेमिसेलूलोज और सेल्युलोज के बीच पाए जाने वाले एस्टर बॉन्ड को तोड़ते हैं। विकासशील देशों में विभिन्न क्षारीय पदार्थो में से चारे उपचार हेतु यूरिया का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। क्योंकि यह अपेक्षाकृत सस्ता एवं सुरक्षित है तथा चारे को नाइट्रोजन में प्रचुर बनाता है। शोध में पाया गया है की चावल के भूसे के पाचन को सुधारने हेतु 3 प्रतिशत यूरिया एवं 4 प्रतिशत चूने का मिश्रण मिलाकर भूसे को 50 प्रतिशत नमी पर 3 सप्ताह के लिए रखना चाहिए।

4. ईंधनः

ग्रामीण एवं पिछड़े क्षेत्रों में जहां एलपीजी कनेक्शन उपलब्ध नहीं हैं, खाना पकाने के लिए ईंधन के रूप में फसल अवशेषों का व्यापक रूप से उपयोग किया जाता है। अरहर, कपास, सरसों, सूरजमुखी, जूट के डंठल को आमतौर पर ईंधन की लकड़ी के रूप में पसंद किया जाता है। अन्य फसलों का भूसा कम घनत्व तथा खराब थर्मल दक्षता के कारण कम ऊर्जा उत्पादित करता है एवं भारी वायु प्रदूषण फैलाता है। अतः फसल अवशेषों की ईंधनीय गुणवत्ता बढ़ाने हेतु कार्बोनीकरण एवं घनीकरण की जरुरत होती है। कार्बोनीकरण हेतु भूसे को 450–500 डिग्री सेल्सियस तापमान पर ऑक्सीजन की कमी वाले वातावरण में गर्म करते हैं जिससे पानी और वाष्पशील पदार्थ निकल जाते हैं तथा कार्बन युक्त (85–98 प्रतिशत) झरझरा, भंगुर और कुशल ईंधन बन जाता है। यह कार्बनीकृत भूसा जलने पर कम धुआं, राख और चिंगारी पैदा करता है और लंबे समय तक जलता है। खाना पकाने और लॉन्ड्रिंग के अलावा कार्बनीकृत भूसे का उपयोग चाय की दुकान पर ब्रॉयलर में और होटलों में तंदूर चूल्हों में ईंधन के स्रोत के रूप में किया जा सकता है।

5. बिछावन सामग्रीः

बारीक कटे हुए फसल अवशेष का पशुओं हेतु बिछावन सामग्री में इस्तेमाल किया जाता है। यह लागत प्रभावी,

स्थानीय रूप से उपलब्ध और आरामदायक बिछावन सामग्री है। इसमें अच्छे तापीय गुण होते हैं जो इसे बिछावन के लिए एक आदर्श विकल्प बनाते हैं। फसल अवशेष पशु मूत्र को अवषोशित करके जानवरों को सूखा और साफ रखते है तथा अपघटन के बाद ये जैविक खाद में रूपांतरित हो जाते है। मोटे एवं गाढ़े डंठल वाले भूसे (जैसे सरसों के भूसे) को नीचे की परत में लगाया जाना चाहिए तथा पतले एवं कोमल भूसे को ऊपरी सतह पर बिछाना चाहिए। शोध में पाया गया है की सर्दियों के दौरान मवेषियों हेतु धान के भूसे के बिछावन से दूध की गुणवत्ता और मात्रा में सुधार होता है। धान के पुआल के बिस्तर जानवरों को खुद को गर्म रखने और शरीर से गर्मी के नुकसान की उचित दर बनाए रखने में मदद करते है। यह स्वच्छ, शुष्क, आरामदायक और फिसलन रहित वातावरण भी प्रदान करता है जो चोट और लंगड़ापन की संभावना को रोकता है तथा थन को भी रोगमुक्त रखता है। स्वस्थ पैर और खुर पशुओं के दूध उत्पादन और प्रजनन क्षमता में वृद्धि सुनिश्चित करते हैं। बिस्तर के लिए इस्तेमाल किए जाने वाले धान के भूसे को बाद में बायोगैस संयंत्रों में इस्तेमाल किया जा सकता है।

6. छप्पर और बाड़ लगानाः

अधिकांशतः जनजातीय घरों और झोंपड़ियों की छतें सस्ते और प्रचुर मात्रा में उपलब्ध फसल अवशेषों द्वारा बनाई जाती हैं। चावल, गेहूं, बाजरा और ज्वार इत्यादि के अवशेष विशेष तौर पर छप्पर बनाने के लिए उपयोग में लिए जाते हैं। बाड़ लगाने के लिए अक्सर जूट की छड़ें और ज्वार के भूसे का उपयोग किया जाता है।

7. बायो–गैस उत्पादनः

बायो–गैस फसल अवशेषों के अवायवीय पाचन द्वारा निर्मित ऊर्जावान गैस है (चित्र 1)। इसका उपयोग खाना पकाने, बिजली उत्पादन या परिवहन ईंधन के रूप में किया जा सकता है। बायोगैस बनाने की प्रक्रिया में तरल उप–उत्पाद प्राप्त होता है जिसको पादप पोषक तत्व में प्रचुर होने के कारण जैविक खाद की तरह उपयोग में लिया जा सकता हैं। मीथेन तथा कार्बन डाई ऑक्साइड बायोगैस के मुख्य घटक है जो कच्चे बायोगैस का क्रमशः 60 एवं 30–40 प्रतिशत हिस्सा बनाते हैं। फसल अवशेष बायोगैस उत्पादन के लिए सस्ता और आसानी से उपलब्ध कार्बनिक पदार्थ माना जाता है। बायोगैस उत्पादन के लिए ठोस सांद्रता और उचित कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात बहुत महत्वपूर्ण है। लगभग 8–10 प्रतिशत ठोस सांद्रता बायोगैस उत्पादन के लिए आदर्श है। गाढ़ा मिश्रण (>40 प्रतिशत ठोस) एसिटिक एसिड के संचय को बढ़ाता है जिससे किण्वन प्रक्रिया रुक जाती है, जबकि पतला मिश्रण प्रति यूनिट मात्रा में बायोगैस उत्पादन को कम करता है। बायोगैस उत्पादन के लिए इष्टतम कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात 30:1 है। फसल अवशेष के उच्च सी/एन अनुपात, अधिक लिग्निन मात्रा और इसकी जटिल एवं स्थिर संरचना जैव–गैसीकरण की दर को धीमी कर देते है। अतः फसल अवशेष का नाइट्रोजन समृद्ध सामग्री जैसे पशु खाद या हरे कचरे (खरपतवार/रसोई अपशिष्ट) के साथ सह–अपघटन किया जाना चाहिए। शोध से ज्ञात हुआ है की पूर्व उपचार एवं अपघटन के दौरान यूरिया एवं कैल्शियम ऑक्साइड से परिवर्धन भी बायोगैस उत्पादन को बढ़ाते हैं। चावल के भूसे के प्रबंधन के लिए पंजाब कृषि विश्वविद्यालय, लुधियाना में एक बायोगैस संयंत्र डिजाइन किया गया है जो 0.4 टन गोबर और 1.6 टन भूसे (1::4) का पूर्ण–पाचन लगभग 90–120 दिन में कर सकता है। एक बैच तीन महीने के लिए प्रति दिन 4–5 घन मीटर बायोगैस का उत्पादन कर सकता है। नवीन और नवीकरणीय ऊर्जा मंत्रालय, भारत सरकार ने 2018 में कृषि अपशिष्ट/अवशेषों से ऊर्जा के रूप में बायोगैस–बायो–सीएनजी, समृद्ध बायोगैस/शक्ति बनाने वाले सयंत्रो को वित्त सहायता प्रदान करने के लिए एक कार्यक्रम शुरू किया। इस परियोजना के तहत शहरी और कृषि अपशिष्ट (धान का भूसा, कृषि प्रसंस्करण उद्योग अवशेष, हरा घास आदि) पर आधारित सयंत्र पूंजीगत सब्सिडी और सहायता अनुदान के लिए पात्र है।

तालिका 2: बायोगैस उत्पादन के लिए विभिन्न पदार्थों के लक्षण

पदार्थ	ठोस सांद्रता (प्रतिशत)	कार्बन/नाइट्रोजन अनुपात
चावल का भूसा	89	80–140:1
गेहूँ का भूसा	82	80:1
गाय का गोबर	16	10–30:1
कुक्कुट अपशिष्ट	25	5–8:1
भेड़ और बकरी अपशिष्ट	30	30:1

8. कम्पोस्ट तैयार करनाः

फसल अवशेष अपशिष्ट न होकर बहुत ही मूल्यवान प्राकृतिक संसाधन है। ये पोषक तत्व के अच्छे स्रोत हैं क्योंकि अनाज फसलों द्वारा ग्रहण किया गया 25 प्रतिशत नाइट्रोजन और फॉस्फोरस, 50 प्रतिशत सल्फर और 75 प्रतिशत पोटेशियम इन्ही में रहता है। फसल अवशेष की खाद बायोमास जलाने और कृषि में रासायनिक उर्वरकों के अनुप्रयोग से जुड़े पर्यावरण प्रदूषण को संबोधित करने के लिए एक लागत प्रभावी और टिकाऊ दृष्टिकोण है। यह मूल्य वर्धित जैव–उत्पाद मिट्टी के गुणों में सुधार और पौधों की वृद्धि में योगदान देता है। कम्पोस्ट बनाने हेतु कार्बन एवं नाइट्रोजन का अनुपात 30:1 से कम होना चाहिए। अनाजीय फसलों से प्राप्त फसल अवशेषों में यह अनुपात 100:1 से ज्यादा होता है। इस कारण इनको कम्पोस्ट में परिवर्तित होने में बहुत समय लगता है। कार्बन एवं नाइट्रोजन के बीच संतुलन बनाने के लिए तथा जल्द से कम्पोस्ट तैयार करने हेतु, कार्बन समृद्ध सामग्री (फसल अवशेषों) को नाइट्रोजन युक्त सामग्री (हरा कचरा, गोबर, कुक्कुट अपशिष्ट इत्यादि) या यूरिया के साथ मिश्रित किया जाना चाहिए। इसके अलावा सेलूलोज को गलाने वाले जीवाणु (एजोटोबैक्टर क्रोकॉकम) एवं कवक (प्लुरोटस साजोर–काजू, पहनेरोचौते क्रिसोस्पोरियम, ट्राइकोडर्मा हर्जियानम, एस्परगिलस नाइजर) द्वारा फसल अवशेषों का पूर्व अपघटन करवाने से खाद बहुत जल्द तैयार हो जाती है।

9. मशरूम की खेतीः

भारत में विशेषतः तीन तरह की मशरुम ऊगाई जाती है – बटन, ऑयस्टर और स्ट्रॉ मशरूम। बटन मशरूम मुख्य रूप से अनाजीय अवशेष, गन्ना खोई, नमक एवं चावल/गेहूं की भूसी के मिश्रण पर उत्पादित किया जाता है। ऑयस्टर और स्ट्रॉ मशरूम उगने हेतु कम लिग्निन और उच्च सेल्युलोज वाले कार्बनिक पदार्थ लाभकारी पाए गए है। अतः चावल, गेहूं, मक्का, बाजरा, सूरजमुखी, जूट और कपास के भूसे, सूखे घास, केले के पत्ते आदि को ऑयस्टर और स्ट्रॉ मशरूम उगाने के लिए उपयोग किया जा सकता है। ये सेल्युलोज समृद्ध कार्बनिक पदार्थ एंजाइमों के उत्पादन को बढ़ाकर मशरूम की बेहतर पैदावार देते हैं। मशरूम उत्पादन के बाद उपयोग किए गए फसल अवशेष को जैविक खाद में रूपांतरित कर सकते हैं। एक किलोग्राम धान की भूसी से क्रमशः 300, 120–150 और 600 ग्राम बटन, स्ट्रॉ एवं ओएस्टर मशरूमों का उत्पादन होता है।

10. ऊर्जा उत्पादनः

फसल अवशेष आसानी से उपलब्ध, सस्ते और नवीकरणीय ऊर्जा स्रोत जिनके प्रत्यक्ष दहन, गैसीकरण, पायरोलिसिस और किण्वन से ऊर्जा प्राप्त की जा सकती है। फसल अवशेषों से निर्मित जैव ईंधन को और जैव ईंधन के साथ मिश्रित करके जीवाष्म ईंधन के दोहन को बचाया जा सकता है, जिससे जीएचजी उत्सर्जन कम होगा और जलवायु परिवर्तन को कम करने में मदद मिलेगी। परंपरागत संसाधनों के बजायं फसल अवशेषों के उपयोग के लाभ यह हैं कि इस तरह के अवशेष नवीकरणीय हैं, आसानी से उपलब्ध हैं और 99 प्रतिशत दक्षता के साथ बॉयलर में जलाकर सफलतापूर्वक उपयोग किया जा सकता है। इसके अलावा, ये कोयले की तुलना में कम लागत पर उपलब्ध हैं, और साथ ही कोयले (4200 किलो कैलोरी/किग्रा) और धान के भूसे (3,590 किलो कैलोरी/किग्रा) दोनों का कैलोरी मान तुलनीय है। भूसे की बिक्री से किसानों को अतिरिक्त आय प्राप्त होती है। साथ ही, इसमें शामिल संस्थाए/राज्य भी विकसित देशों से कार्बन क्रेडिट नीति का लाभ उठा सकते हैं। वर्तमान में, भारत में कुल चावल अवशेषों का केवल 10 प्रतिशत जैव ऊर्जा उत्पादन के लिए उपयोग किया जाता है।

10.1 प्रत्यक्ष–दहनः बायोमास को ऑक्सीजन की उपस्थिति में सीधे जलाकर संग्रहीत ऊर्जा से ऊष्मा और बिजली का उत्पादन किया जा सकता है। बायोमास को ऊष्मा में परिवर्तित करने के लिए प्रत्यक्ष दहन सबसे अच्छी तरह से स्थापित और सबसे अधिक इस्तेमाल की जाने वाली तकनीक है। फसल अवशेषों का कम घनत्व, आर्द्रताग्राही और जैव–अपघटनीय प्रकृति एवं कम ऊष्मीय मूल्य प्रत्यक्ष–दहन विधि द्वारा ऊर्जा उत्पादन में बाधा डालते हैं। इसलिए, इनके ईंधन गुणों में सुधार के लिए छर्रों बनाकर (पेलेटाइजेशन) फसल अवशेषों के घनत्व को बढ़ाने की आवश्यकता रहती है। पेलेटाइजेशन एक यांत्रिक प्रक्रिया है जिसमें फसल अवशेषों को बारीक पीसकर उच्च दबाव में संकुचित किया जाता है, जिससे बायोमास से

समान आकार के छर्रे बनते हैं। पेलेटाइजेशन बायोमास के आयतन को कम करता है और उच्च कैलोरी मान के साथ कुशल ठोस ईंधन का उत्पादन करता है। इसके अलावा यह प्रक्रिया बायोमास के घनत्व, प्रवाह–क्षमता और ऊष्मीय मूल्य को बढ़ाता है और परिवहन और भंडारण लागत को कम करता है। पेलेटाइजेशन बायोमास को अधिक प्रवाह योग्य और सजातीय बनाता है जिससे बायोमास एक समान जलता है। पेलेटाइजेशन द्वारा बने छर्रों का उपयोग खाना पकाने/कमरे को गर्म करने या बिजली उत्पादन के लिए कोयले के साथ सह–दहन में किया जा सकता है। केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण, भारत सरकार ने 2019 में कोयले से चलने वाले बॉयलर में से बिजली उत्पादन के लिए बायोमास के उपयोग हेतु नीति परामर्श जारी किया। एनटीपीसी ने शोध में पाया की कोयले के साथ 7 प्रतिशत तक बायोमास छर्रों का मिश्रण सफलतापूर्वक उपयोग में कर सकते हैं। बायोमास छर्रों के उपयोग को बढ़ावा देने के लिए सभी सार्वजनिक और निजी कोयला आधारित तापीय सयंत्रो को बायोमास छर्रों (मुख्य रूप से कृषि अवशेष) के 5–10 प्रतिशत मिश्रण का उपयोग करने की सलाह दी गयी है। इस नीति के तहत सालाना 53.5 मिलियन फसल अवशेष का उपयोग बिजली बनाने में किया जा सकता है जो देश में कुल वार्षिक अधिशेष फसल अवशेष का लगभग 30 प्रतिशत है। जलाने के अलावा, छर्रों का उपयोग पशुओ हेतु बिछावन के लिए भी किया जा सकता है क्योंकि एक ग्राम फसल अवशेष के छर्रे लगभग 3.4–ग्राम नमी को अवशोषित कर सकते हैं। छर्रों को जलाने से उत्पन्न राख पौधों के विकास के लिए महत्वपूर्ण तत्वों का समृद्ध स्रोत है, इसलिए इसे खनिज उर्वरक के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

10.2 पायरोलिसिसः इसमें ठोस बायोमास को ऑक्सीजन रहित अवस्था में 450–600 डिग्री सेल्सियस तापमान पर रखा जाता है जिसके परिणाम स्वरुप ज्वलनशील तेल (बायो–ऑयल), सिनगैस और बायोचार का निर्माण होता है। इस जैव–तेल का उपयोग कच्चे तेल के स्थान पर परिवहन ईंधन के रूप में किया जा सकता है। डीजल की तुलना में इसका उश्मीय मूल्य लगभग 55 प्रतिशत होता है। इसे पेट्रोलियम आधारित उत्पाद की तरह संग्रहित, पंप और परिवहन किया जा सकता है और बॉयलर, गैस टर्बाइन और धीमी और मध्यम गति डीजल में सीधे दहन करके गर्मी और बिजली उत्पादन एवं परिवहन में काम लिया जा सकता है। इसका सहउत्पाद बायोचार एक बारीक दानेदार ठोस है जो हजारों वर्षों तक बिना अपघटित हुए मृदा में रह सकता है। बायोचार एक कार्बन समृद्ध उत्पाद है, जिसका उपयोग मिट्टी की उत्पादकता, मृदा स्वास्थ्य एवं दीर्घकालीन कार्बन भंडारण बढ़ने हेतु किया जाता है। बायोचार वातावरण में जीएचजी उत्सर्जन के कारण होने वाले जलवायु परिवर्तन के खतरे को कम करने में मदद करता है। इसके अलावा बायोचार अम्लीय मिट्टी की उर्वरता को बढ़ाता है, कृषि उत्पादकता में वृद्धि करता है और कुछ पत्तेदार और मिट्टी से पैदा होने वाली बीमारियों से सुरक्षा प्रदान करता है।

10.3 गैसीकरणः यह बायोमास का ऊष्मा–रासायनिक रूपांतरण है जिससे सिनगैस बनती है। इसमें बायोमास का उच्च तापमान (700–800 डिग्री सेल्सियस) पर आंशिक ऑक्सीजन की उपस्थिति में रासायनिक अपचयन करते है। इन प्रतिक्रियाओं से कार्बन मोनोऑक्साइड, सिनगैस और चारकोल का उत्पादन होता है। सिनगैस, बायोगैस और एलपीजी के साथ तुलनीय है। सिनगैस का ऊष्मीय मान लगभग 1000 से 1200 किलो कैलोरी होता है और मुख्य रूप से इसमें कार्बन मोनोऑक्साइड, हाइड्रोजन और नाइट्रोजन होते हैं। सिनगैस का उपयोग यांत्रिक शक्ति और बिजली के उत्पादन हेतु आंतरिक दहन इंजन में ईंधन के रूप में किया जा सकता है। उत्पादक गैस इंजन का उपयोग करके लगभग 1.4 किलोग्राम बायोमास से 1 किलो वाट बिजली का उत्पादन किया जा सकता है। गैसीफायर का अनुप्रयोग करके बिजली उत्पादन की जा सकती है एवं इससे इंजन जनरेटर भी चलाया जा सकता है। इसको सीधे स्टोव, भट्टी या बॉयलर में जलाकर शीतगृह एवं कृषि–प्रसंस्करण उद्योग चलाने के लिए काम में भी ले सकते है। एक 250 किलो वाट क्षमता का बायोमास गैसीफायर संयंत्र सालाना लगभग 2000 टन धान के अवशेषों का उपयोग कर सकता है जिससे की 50 टन सार्मथ्य वाली शीतगृह इकाई चलाई जा सकती है।

10.4 किण्वनः बायोमास के किण्वन से इथेनॉल का उत्पादन होता है जो परिवहन (पेट्रोल/डीजल) और खाना पकाने के ईंधन (एलपीजी, लकड़ी और मिट्टी के तेल) की जगह काम में लिया जा सकता है। प्रत्येक मीट्रिक टन

शुष्क फसल अवशेष से 250–350 लीटर इथेनॉल का उत्पादन किया जा सकता है। पेट्रोलियम और प्राकृतिक गैस मंत्रालय, भारत सरकार ने 8 जून 2018 को जैव ईंधन पर राष्ट्रीय नीति बनाई जिसके तहत 2030 तक पेट्रोल में 20 प्रतिशत एथेनॉल मिलाने का लक्ष्य रखा गया। यह तकनीक भारत को अपने जीएचजी उत्सर्जन को कम करने और वातावरण की सुरक्षा के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरा करने के लिए दुर्जेय उपकरण है। चावल, गेहूं एवं मक्का के भूसे, गन्ना खोई, कपास के डंठल, नगरपालिका ठोस अपशिष्ट और वानिकी अवशेष इत्यादि से इथेनॉल का उत्पादन कर सकते है। आईओसीएल पानीपत का दूसरा 100 किलो लीटर प्रति दिन सेल्यूलोसिक एथेनॉल उत्पादन क्षमता वाला गैर–खाद्य बायोमास (कृषि अपशिष्ट) आधारित संयंत्र स्थापित करने का प्रस्ताव रखा गया है। इस संयंत्र द्वारा प्रतिवर्ष लगभग 0.2 मैट्रिक टन कृषि बायोमास का उपयोग किया जाएगा। हिंदुस्तान पेट्रोलियम भी 100 किलो लीटर प्रति दिन क्षमता वाला लिग्नो–सेलुलॉजिक 2जी एथेनॉल संयंत्र को पंजाब के बठिंडा जिले में नसीबपुरा स्थापित कर रहा है। यह संयंत्र प्रतिदिन लगभग 500–600 टन धान की पराली का उपयोग करेंगा।

11. अन्य उपयोगः फसल के भूसे का उपयोग करके लैम्पषेड, बर्तन, चटाई/कालीन, मूर्ति और कृत्रिम पक्षी घोंसला तैयार किया जा सकता है। चावल के भूसे के गूदे को सूती कपड़े के साथ 60:40 के अनुपात में मिलाकर लैंपषेड और बर्तन बनाए जाते हैं। फर्नीचर की पैकिंग और फलों के परिवहन के लिए फसल के भूसे का उपयोग सस्ते पैकेजिंग सामग्री के रूप में भी किया जा रहा है।

निर्धारित रणनीति

- फसल अवशेष संग्रहण एवं एकत्रीकरणर हेतु भण्डारण डिपो बनाना।
- मौजूदा ताप विद्युत संयंत्रों में 5–10 प्रतिशत धान के भूसे का उपयोग करने को अनिवार्य करना।
- चावल, गेहूं, मक्का, गन्ना इत्यादि फसलों हेतु सरंक्षित खेती को बढ़ावा देना।
- किसान उत्पादक संगठन (एफपीओ) एवं किसान सहकारिता संघ की मदद से फसल अवशेष पेलेट के उत्पादन को प्राथमिकता देना।
- स्थानीय उद्योगों और होटलों/ढाबों में फसल अवशेष से निर्मित पेलेट का ईंधन के रूप में उपयोग को बढ़ावा देना।
- ग्रामीण स्तर पर फसल अवशेषों द्वारा गैसीफायर चलाकर बिजली उत्पादन तथा शीतगृह एवं कृषि–प्रसंस्करण उद्योग को बढ़ावा देना।
- फसल अवशेषों के यथास्थान प्रबंधन के लिए कृषि मशीनीकरण को बढ़ावा देना।
- फसल अवशेष प्रबंधन प्रौद्योगिकी का प्रदर्शन किया जावे एवं संरक्षित खेती पर जागरूकता एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाये जायें।
- उपयुक्त और लागत प्रभावी कृषि मशीनरी का विकास किया जावे जिससे अवशेष संग्रह, परिवहन और आवेदन में सुविधा हो।

भारत एक कृषि प्रधान देश है, जहां अनुकूल जलवायु के कारण साल भर फसल के साथ फसल अवशेषों का उत्पादन होता रहता है। यांत्रिक कटाई के बढ़ते प्रचलन के चलते फसल अवशेष दहन की समस्या उत्तर भारत में व्यापक रूप ले चुकी है। फसल अवशेष दहन से पोषक तत्वों और कार्बनिक पदार्थों की हानि होती है तथा मानव स्वास्थय एवं पर्यावरण पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। फसल अवशेषों को जलाने के बजायं मृदा में मिलाने से मिट्टी की पोषक तत्व प्रदान करने की क्षमता बढ़ती है एवं पर्यावरण की गुणवत्ता भी अच्छी रहती है इसके अलावा फसल अवशेषों का पशु चारे हेतु, कम्पोस्ट बनाने में, मशरूम की खेती में एवं ऊर्जा उत्पादन के लिए उपयोग किया जा सकता है इस तरह से फसल अवशेषों का प्रभावी और वैकल्पिक प्रबंधन जीएचजी उत्सर्जन को कम करता है, साथ ही साथ जीवाष्म ईंधन पर निर्भरता को भी घटा देता है। यदि इसे बायोचार उत्पादन के लिए उपयोग करते है तो यह वायुमंडलीय CO_2 को अधिक समय तक संरक्षित कर सकता है जिससे जलवायु परिवर्तन से रक्षा होती है।

किसानों की आय दोगुनी करने के लिए सरंक्षण कृषि एक व्यावहारिक विकल्प

टी. के. दास एवं ऋषि राज
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

अधिक कृषि उत्पाकता में स्वस्थ मृदा, पर्याप्त जल, संतुलित खाद एवं उर्वरकों का अतिमहत्व है। देश में हरित क्रान्ति के समय फसलों के उत्पादन में बेहतर वृद्धि हुई, परिणाम स्वरूप देश खाद्यानो में आत्म–निर्भर हो गया। हरित क्रान्ति के दौरान धान और गेहूँ की फसलों पर अधिक ध्यान दिया गया। इन फसलों के उत्पादन में नवीनतम् प्रजातियों, सिंचाई जल, खाद व रासायनिक उर्वरकों तथा कृषि रसायनों का भरपूर प्रयोग किया गया। इसके फलस्वरूप उत्पादन बढ़ने के साथ ही कृषि में संसाधनों का अत्यधिक और अनुचित प्रयोग हुआ। जिसके परिणामस्वरूप संसाधनों की गुणवत्ता और मात्रा पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा है फलस्वरूप आज देश की कृषि कई तरह की समस्याओ से ग्रसित हैं जिनमें फसलों की पैदावार और गुणवन्ता में निरंतर गिरावट, मृदा में पोषक तत्वों की कमी और भूजल स्तर में निरंतर गिरावट इत्यादि प्रमुख है। साथ ही मिट्टी, जल और वायु में कई तरह के विषैले पदार्थों की उपस्थिति भी चिन्ता का विषय है। इसके अतिरिक्त किसानों की आय में भारी कमी सबसे प्रमुख है। फसल उत्पादन, भूमि की उर्वराशक्ति एवं पर्यावरण पर आधुनिक कृषि के विपरीत प्रभाव के कारण अब हम यह विचार करने लगे है कि संसाधनों का अत्यधिक, अंधाधुंध और अनुचित दोहन ज्यादा समय तक नहीं चल सकता वरना आने वाली पीढ़ियों का अस्तित्व खतरे में पड़ सकता है। फसल उत्पादन में आ रही उपर्युक्त समस्याओं को ध्यान में रखकर हमें ऐसी संसाधन–सरंक्षण संबंधी तकनीकियो के बारे में सोचना होगा जो अधिक एवं टिकाऊ फसल उत्पादन एवं लाभ के साथ संसाधनों की गुणवन्ता को भी बना के रखें ताकि वर्तमान पीढ़ी की जरूरतों को पूरा करने के साथ–साथ भावी पीढ़ियों के लिए पर्याप्त खाद्यान्न एवं अच्छा वातावरण सुनिश्चित किया जा सके। पिछले लगभग एक–ड़ेढ दशक से हमारे देश के कृषि वैज्ञानिक संसाधन– सरंक्षण संबंधी तकनीकें विकसित करने के लिए अनुसंधान कर रहे हैं। जिसके परिणाम स्वरूप संसाधन संरक्षण सम्बन्धी कई तकनीकें विकसित की गई हैं जिनके द्वारा फसल उत्पादन बढ़ने के साथ–साथ संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में भी सुधार होता है। साथ ही खेती में उत्पादन लागत घटने से किसान की आय भी वृद्धि होती है संरक्षण कृषि ऐसी ही एक प्रमुख तकनीक है। संरक्षण कृषि से संबंधित कुछ महत्वपूर्ण तकनीकें निम्न प्रकार है।

भूमि का समतलीकरण

किसी संसाधन संरक्षण संबंधी तकनीक की सफलता एवं उसके फलस्वरूप फसल की उत्पादकता खेत के समतल होने पर बहुत निर्भर करती है।

लेजर विधि ऐसी ही एक नई वैज्ञानिक तकनीक है जिसमें एक विशेष उपकरण द्वारा खेत की मिट्टी को पूरी तरह समतल किया जाता है। समतल भूमि पर फसल की बुवाई का सबसे बड़ा लाभ पानी की बचत व अधिक फसल उत्पादकता है। सिंचाई का पानी सम्पूर्ण खेत में सामान मात्रा में व कम समय में फैल जाता है। धान की फसल के लिए तो यह बहुत ही उपयोगी तकनीक है जिसमें सिंचाई जल की मात्रा लगभग आधी हो जाती है। लेजर लेवलर मशीन की लोकप्रियता दिनोदिन बढ़ती जा रही है। किसानों के बीच यह मशीन 'कम्प्यूटर' के नाम से प्रचलित है। यद्यपि यह मशीन काफी मंहगी है। परंतु छोटे व सीमांत किसानों की जरूरतों को पूरा करने के लिए आसानी से किराये पर उपलब्ध हो जाती है ।

शून्य जुताई

इस तकनीक में फसलों की बुवाई बिना जुताई किये खेतों में एक विशेष प्रकार की जीरो टिल हेप्पी सीड ड्रिल द्वारा की जाती है (चित्र न.1)। इस मशीन द्वारा जहां बीज की बुवाई करनी हो, उसी जगह से मिट्टी को न्यूनतम्

खोदते हुए कूड़ बना दिये जाते है तथा दो पंक्तियों के बीच की जगह बिना जुती ही रहती है। बुवाई के समय ही आवश्यक उर्वरकों की मात्रा बीज के नीचे डाल दी जाती है। इस विधि से रबी फसलों जैसे गेहूँ, चना, सरसों मसूर जौ और अलसी की बुवाई आसानी से की जा सकती है। इस विधि द्वारा फसलों की बुवाई हेतु भूमि की तैयारी में लगने वाले समय व संसाधनों की बचत की जा सकती है। अतः इस तकनीक द्वारा बुवाई करने पर देरी से बोयी गयी फसलों में होने वाले नुकसान को बचाया जा सकता है। भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के अनुसंधान फार्म पर किये गये प्रयोगों में बिना जुताई से बोयी गयी फसलों की पैदावार 5–10 प्रतिशत अधिक पायी गई है। साथ ही बिना जुताई द्वारा बुवाई करने में लागत कम आती है क्योंकि आम किसान बुवाई के पूर्व खेत की 3–4 बार जुताई करते हैं जिसके कारण होने वाला खर्चा बच जाता है। साथ ही ट्रैक्टर के रखरखाव पर भी कम लागत आती है। इससे रबी फसलों की बुवाई में 4000–5000 रूपये प्रति हेक्टेयर का खर्चा बचाया जा सकता है। इस तकनीक से बुवाई करने पर पानी की मात्रा भी कम लगती है क्योंकि एक तो पलेवा यानि बुवाई–पूर्व सिंचाई की जरूरत नहीं पड़ती है। दूसरे बाद में भी 1–2 सें.मी. प्रति सिंचाई पानी कम लगता है। इस प्रकार मिट्टी में उपस्थित कार्बनिक पदार्थ और उसके ऊपर निर्भर लाभकारी सूक्ष्म जीवों की क्रियाशीलता पर भी अनुकूल प्रभाव पड़ता है जो कि परंपरागत बुवाई में खेतों की बार–बार जुताई करने पर नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार मृदा की उपजाऊ शक्ति को बनाये रखने में भी यह तकनीक सार्थक मानी गयी है।

भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली में संरक्षण खेती की तकनीक पर बड़े पैमाने पर अनुसंधान किये गये है। यह अनुसंधान मुख्यतः धान–गेहूँ, मक्का–गेहूँ, कपास–गेहूँ, अरहर–गेहूँ व सोयाबीन–गेहूँ फसल चक्रों में किये गये हैं (चित्र न. 2, 3 व 4)। इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया है कि धान की सीधी बुवाई वाली फसल की कटाई उपरांत यदि गेहूँ की बुवाई शून्य जुताई तकनीक द्वारा की जाती है तथा गेहूँ की कटाई के तुरंत बाद गर्मियों में मूँग की फसल ली जाती है तो सभी फसलों की पैदावार और शुद्ध लाभ परंपरागत धान–गेहूँ फसल चक्र की अपेक्षा अधिक होती है (सारणी–1)। इस तकनीक का फसलों की पैदावार पर भी कोई प्रतिकूल प्रभाव नहीं पड़ता।

बिना–जुताई वाली खेती में कुछ सावधानियाँ और मुश्किलें भी हैं। एक तो बुवाई के समय मिट्टी में पर्याप्त नमी

चित्र 1. जीरो टिल हेप्पी सीड ड्रिल

चित्र 3. शून्य जुताई में गेहूँ धान फसल अवशेष के साथ

चित्र 2. शून्य जुताई में सीधी बुवाई धान मूँग फसल अवशेष के साथ

चित्र 4. सीधी बुवाई ग्रीष्मकालीन मूंग गेहूँ फसल अवशेष के साथ

सारणी 1. धान–गेहूँ फसल–चक्र में संरक्षण खेती का प्रभाव

तकनीक	दोनों फसलों की गेहूँ के तुल्याँक पैदावार (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रू/है. हजार में)
शून्य जुताई में धान की सीधी बुवाई गेहूँ फसल अवशेष–शून्य जुताई में गेहूँ की बुवाई धान फसल अवशेष	10.42	132.2
शून्य जुताई में धान की सीधी बुवाई मूँग फसल अवशेष–शून्य जुताई में गेहूँ की बुवाई धान फसल अवशेष–शून्य जुताई में मूँग की बुवाई गेहूँ फसल अवशेष	10.47 (13.96 मूँग के साथ)	138.8 (167.5 मूँग के साथ)
रोपाई धान–शून्य जुताई में गेहूँ की बुवाई	10.28	127.3
रोपाई धान–सामान्य बिधि से गेहूँ की बुवाई	9.82	105.7

होनी चाहिए ताकि मिट्टी और बीज का संपर्क अच्छी तरह हो जाए। दूसरा बुवाई के समय ज्यादा सावधानी रखने की जरूरत होती है कि कहीं सीड ड्रिल की पाइपें बंद न हो जाएं। यद्यपि सीड ड्रिल की पाइपें पारदर्शी होती हैं उनसे बीज गिरता हुआ स्पष्ट नजर आता है। खरपतवारों के नियंत्रण में भी ज्यादा सावधानी की जरूरत होती है। इसके लिए बुवाई से पहले पेराक्वाट अथवा ग्लाईफोसेट नामक खरपतवारनाशी का प्रयोग करना चाहिए। जिससे पहले से उगे हुए सारे खरपतवार नष्ट हो जाएं। कुछ भारी जमीनों में पौधों की जड़ों की वृद्धि कम हो सकती है। इसके लिए मिट्टी पर फसल अवशेषों या अन्य वनस्पति पदार्थों की परत डालने से पौधों की जड़ों के विकास पर अनुकूल प्रभाव पड़ता है।

मेड़ विधि

इस तकनीक में फसलों की बुवाई मेड़ों पर करने के लिए एक यन्त्र तैयार किया गया है। इस तकनीक में दो तरह की मेड बनाई जाती है चौड़ी मेड जिसकी चौड़ाई 100 से 110 सेंटी मीटर एवं सकरी मेड जिसकी चौड़ाई 35 से 40 सेंटी मीटर रखी जाती है बुवाई मेड़ों पर और कूड़ो में भी फसल के अनुसार की जा सकती है। गेहूँ के लिए सकरी मेड़ों पर 2 से 3 पंक्तियाँ एवं चौड़ी मेडो पर 5 से 6 पंक्तियाँ की बुवाई की जा सकती हैं जबकि सोयाबीन, सरसों, चना, मूँग की सकरी मेड़ों दो लाइन काफी होती है (चित्र न. 5, 6, 7 व 8)। यह तकनीक खेतों की भली–भाँति जुताई करने के बाद या फिर पिछली फसल के लिए बनायी मेड़ों पर बिना जुताई के भी अपनाई जा सकती है। इस विधि से बुवाई करने के कई लाभ हैं। जैसे वर्षा ऋतु में खेतों में ज्यादा पानी खड़ा होने से मेड़ों पर उगे पौधे ज्यादा सुरक्षित होते हैं क्योंकि अनावश्यक पानी को नालियों में से होकर बाहर निकाला जा सकता है। फसलों की सिंचाई करने पर पानी की मात्रा 20–30 प्रतिशत तक कम लगती है। साथ ही प्रति यूनिट पानी की उत्पादकता भी बढ़ती है। इस तकनीक द्वारा फसल उत्पादन में यह भी देखा गया है कि बीज और खाद की मात्रा 15–20 प्रतिशत कम लगती है क्योंकि इनका प्रयोग सिर्फ मेड़ों पर ही किया जाता है। इस विधि में मेड़ों पर खरपतवार भी कम आते हैं। इसका कारण यह है कि मेड़ों पर फसल के पौधों की संख्या ज्यादा होती है। जिससे खरपतवारों को पनपने का मौका नहीं मिलता है। यद्यपि नालियों में ज्यादा खरपतवार आते हैं क्योंकि फसल की आरंभिक अवस्थाओं में उनके उगने के लिए पर्याप्त जगह होती है। खरपतवारों की रोकथाम हाथ से चलाने वाले अथवा ट्रैक्टर–चलित यंत्रों द्वारा आसानी से की जा सकती है। इस प्रकार मेड़ों पर बुवाई करने से संसाधनों का कम प्रयोग होने के साथ–साथ पैदावार भी 10–15 प्रतिशत ज्यादा या फिर समतल जमीन पर बुवाई करने के बराबर ही मिलती है। कपास–गेहूँ फसल चक्र में शून्य जुताई और चौड़ी क्यारी मे बुवाई बहुत सार्थक पायी गयी है। यदि फसलों के अवशेषों को भी मिट्टी की सतह पर बिछा दिया जाए तो यह तकनीक और भी ज्यादा लाभकारी सिद्ध हुई है। जिसका मृदा नमी, कार्बनिक कार्बन की मात्रा व तापमान पर तो अनुकूल प्रभाव पड़ता ही है साथ ही खरपतवारों की रोकथाम में भी सहायता मिलती है। संरक्षण खेती की तकनीकियों द्वारा फसलों की उपज

और शुद्ध लाभ में भी बढ़ोतरी आंकी गयी है। इसके अलावा सिंचाई जल की उत्पादक– दक्षता में भी सुधार पाया गया है (सारणी 2)।

सारणी 2. कपास–गेहूँ फसल चक्र में संरक्षण खेती की तकनीकों का प्रभाव

तकनीक	दोनों फसलों की गेहूँ तुल्य उपज (टन/है.)	शुद्ध लाभ (₹ हजार/है)	जल उत्पादकता (कि.ग्रा. गेहूँ/है.–मि.मी.)
समतल भूमि पर सामान्य बुवाई	9.04	106.4	8.62
शून्य जुताई द्वारा सकरी मेड़ों पर बुवाई फसल अवशेष	11.17	142.9	11.30
शून्य जुताई द्वारा चौड़ी मेड़ों पर बुवाई फसल अवशेष	13.01	161.9	12.08
शून्य जुताई द्वारा समतल भूमि पर बुवाई फसल अवशेष	12.08	159.8	10.38

चित्र 5. कपास शून्य जुताई चौड़ी मेड़ों पर बुवाई फसल अवशेष के साथ

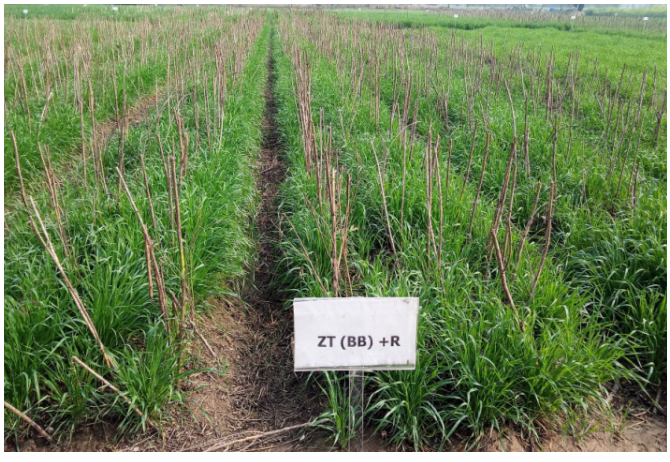

चित्र 6. गेहूँ शून्य जुताई चौड़ी मेड़ों पर बुवाई फसल अवशेष के साथ (अरहर–गेहूँ प्रणाली में)

चित्र 7. गेहूँ शून्य जुताई सकडी मेड़ों पर बुवाई+फसल अवशेष के साथ (मक्का –गेहूँ प्रणाली में)

चित्र 8. गेहूँ शून्य जुताई सकडी मेड़ों पर बुवाई+फसल अवशेष के साथ (अरहर–गेहूँ प्रणाली में)

मेड़ों पर बुवाई करने के लिए कुछ सावधानियों का ध्यान रखना बड़ा जरूरी है। इसके लिए खेत पूरी तरह से समतल होना चाहिए। अगर अच्छी जुताई के बाद मेड़ों पर बुवाई करनी हो तो मिट्टी पूरी तरह से भुरभुरी होनी चाहिए। मेड़ों पर बुवाई करने के लिए सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि मृदा में उचित नमी होनी चाहिए अन्यथा नमी की कमी में बीजों का जमाव ठीक से नहीं हो पाता है।

चित्र 9. मक्का शून्य जुताई व फसल अवशेष के साथ

अन्य फसल प्रणालियाँ

संरक्षण खेती के अंतर्गत कपास–गेहूँ फसल चक्र में अरहर–गेहूँ और मक्का–गेहूँ फसल चक्रों की अपेक्षा लगभग 1.0–1.5 गुणा अधिक उत्पादकता मिलती है (सारणी 3)। फसल अवशेषों के साथ मेंड़ पर बुवाई करना समतल बुवाई की अपेक्षा बेहतर है । साथ ही उपर्युक्त तीनों फसल प्रणालियों के अंतर्गत फसल अवशेषों के साथ मेंडों पर बुवाई करने से अधिक फसल उत्पादकता मिलती है (चित्र न. 9, 10)।

चित्र 10. अरहर शून्य जुताई व फसल अवशेष के साथ

सारणी 3. विभिन्न फसल प्रणालियों में शून्य जुताई के अंतर्गत गेहूँ के तुल्याँक प्रणाली उत्पादकता

उपचार	कपास–गेहूँ (टन/है.)	अरहर–गेहूँ (टन/है.)	मक्का–गेहूँ (टन/है.)
परम्परागत समतल बुवाई	9.04	9.02	9.54
शून्य जुताई द्वारा संकरी मेड़ों पर बुवाई	10.31	9.70	10.27
शून्य जुताई द्वारा संकरी मेड़ों पर बुवाईफसल अवशेष	11.17	10.26	10.72
शून्य जुताई द्वारा चौड़ी मेड़ों पर बुवाई	11.03	10.23	10.82
शून्य जुताई द्वारा चौड़ी मेड़ों पर बुवाई+फसल अवशेष	12.07	10.91	11.42

कपास–गेहूँ फसल प्रणाली धान–गेहूँ प्रणाली की तरह तुलनीय उत्पादकता और शुद्ध लाभ उपलब्ध कराती है। यह धान–गेहूँ फसल प्रणाली का विकल्प हो सकती है (सारणी 4)।

सारणी 4. सिंचित दशाओं में विभिन्न फसल प्रणालियों के अंतर्गत गेहूँ तुल्याँक प्रणाली उत्पादकता और शुद्ध लाभ

फसल प्रणाली	गेहूँ तुल्याँक प्रणाली उत्पादकता (टन/है.)	शुद्ध लाभ (रू हजार/है.)
मक्का–गेहूँ (शून्य जुताई चौडी मेंड़)फसल अवशेष	11.42	134.0
अरहर–गेहूँ (शून्य जुताई चौडी मेंड़) फसल अवशेष	10.91	137.2
कपास–गेहूँ (शून्य जुताई चौडी मेंड) फसल अवशेष	12.07	159.8

धान की सीधी बुवाई. मूँग अवशेष –शून्य जुताई गेहूँ. धान अवशेष –मूँग की सीधी बुवाई. गेहूँ अवशेष	10.47 (13.96 मूँग के साथ)	138.8 (167.5 मूँग के साथ)
रोपाई धान–गेहँ की परंपरागत बुवाई	9.82	105.7

मक्का–गेहूँ, अरहर–गेहूँ और कपास–गेहूँ फसल प्रणालियों में शून्य जुताई द्वारा बुवाई के अंतर्गत कम सिंचाई जल की आवश्यकता होती है जिसके परिणामस्वरूप समतल बुवाई की अपेक्षा अधिक उत्पादकता मिलती है।

वर्तमान परिदृश्य में पारम्परिक कृषि के अंतर्गत एक वर्ष में 2–3 फसलें और लगातार एक ही तरह की फसलें उगाने से एवं रासायनिक उर्वरकों का अत्यधिक व अनुचित प्रयोग, जैविक खादों के प्रयोग की अनदेखी करने के कारण भारतीय कृषि में ज्यादा उत्पादन लागत और कम फायदा हो रहा है। दूसरी तरफ संसाधनों की मात्रा और गुणवत्ता में कमी होने से आज विश्व के कई देश संरक्षण खेती को बड़े व्यापक स्तर पर अपना रहे हैं। वर्तमान में विश्व में लगभग 180 मिलियन हेक्टेयर क्षेत्र पर संरक्षण खेती की जा रही है। संरक्षण खेती करने वाले देशों में अमेरिका, आस्ट्रेलिया, कनाडा, ब्राजील और अर्जेन्टीना प्रमुख हैं। इस विधि का मुख्य उद्देश्य यह है कि खेत की मिट्टी की न्यूनतम जुताई की जाए या बिल्कुल न की जायें भारी मशीनों का कम से कम प्रयोग किया जाए व मृदा सतह को हर समय फसल अवशेषों या दूसरे किसी वनस्पति आवरणों से ढ़ककर रखा जाए तथा फसल चक्र पद्धति को अपनाया जाये। इससे फसलों की पैदावार बढ़ने के साथ–साथ संसाधनों जैसे मिट्टी, पानी, पोषक तत्व, एवं ऊर्जा के संरक्षण, फसल उत्पाद और वातावरण की गुणवत्ता में वृद्धि होती है जो कि कृषि में टिकाऊपन लाने के लिए बहुत जरूरी है। इसमें कोई संदेह नहीं कि भविष्य में इसी तरह की खेती को ही अपनाना होगा ताकि हमारी आने वाली पीढ़ियां अच्छे से अपना जीवन निर्वाह कर सकें। किसान भाई इस वैज्ञानिक प्रौद्योगिकी को अपनाकर अधिक फसल उत्पादन के साथ साथ अधिक लाभ अर्जित कर सकते हैं।

फलवृक्षों में वर्षा ऋतु के उपरान्त होने वाले समसामयिक कार्यों का प्रबंधन

महेंद्र कुमार वर्मा एवं अरविन्द
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

फलवृक्षों में अच्छी पैदावार लेने के लिए उचित समय पर कृषि क्रियाओं का करना अति आवश्यक है। किसी भी एक कृषि क्रिया को देर से करने या नहीं करने से बागवानी में लाभ के बजायं हानि हो सकती है। इसलिए किसान भाई वर्षा ऋतु के उपरान्त होने वाले समसामयिक कार्यो का प्रबंधन निम्न प्रकार कर सकते है जिससे की बागवानी में उपज अच्छी हो तथा फलस्वरूप उनकी आमदनी में वृद्धि हो सके।

जल निकास की व्ययस्था करना

अतिरिक्त जल मृदा सतह पर बहुत से प्राकृतिक और आप्रकृतिक कारणों से ठहर जाता है। जिनमें अधिक वर्षा, आवश्यकता से अधिक सिंचाई, जल स्रोतों, नहर और नालों से रिसाव, बाढ़ इत्यादि मुख्य है। अतिरिक्त जल को निकालकर पौधों को बढ़ने के लिये अच्छी परिस्थितियाँ प्रदान करना ही जल निकास कहलाता है। इसके लिए (i) सतही जल निकास (खुली नालियों के द्वारा और (ii) अधिस्थल जल निकास (भूमिगत नालियों के द्वारा जल निकास की व्यवस्था) कर सकते है। बाग के ढाल के अनुसार नालियाँ बनाकर उन्हें प्राकृतिक जल स्रोत जैसे तालाब, नाले अथवा नदी तक छोड़ देना चाहिए जिससे की अतिरिक्त पानी बाहर निकल सके, जल निकास के समय यह विशेष ध्यान रखना चाहिए की बाग से मृदा का कटाव न होने पाए।

थाले बनाना

वर्षा ऋतु में पौधों में थाले बनाने का कार्य करना चाहिए जिससे की उनमें वर्षा के पानी का संचयन किया जा सके तथा मृदा अपरदन को कम किया जा सके।

खरपतवार नियंत्रण

फलवृक्षों की अच्छी बढ़वार के लिए उनमें सही समय पर खरपतवार नियंत्रण करना चाहिए। अधिक खरपतवार होने पर फलों की उपज पर लगभग 35% तक हानि हो सकती है इसलिए निराई–गुड़ाई एवं रासायनिक नियंत्रण के द्वारा खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है

(i) फलवृक्षों की अच्छी उपज के लिए अच्छी प्रकार से निराई गुड़ाई करें, इससे खरपतवार तो नष्ट होते ही हैं साथ ही मिटटी में हवा का संचार भी होता है और मिटटी की उपरी पपड़ी के टूटने से नमी का संचार बढ़ता है। वर्षा कम होने पर या पानी के अभाव में निराई–गुड़ाई पौधों के लिए वरदान की तरह होती है।

(ii) रसायनों के द्वारा खरपतवार नियंत्रण – बागों में खरपरवारनाशी रसायनों का प्रयोग करके भी खरपतवारों को नष्ट किया जा सकता है। इससे प्रति हेक्टेयर समय तथा लागत में बचत होती है तथा श्रम शक्ति भी कम लागती है, व मुख्य पौधों को सुरक्षित रखते हुए ज्यादा बड़े पैमाने पर खरपतवार नियंत्रण किया सकता है।

पौधों को सहारा प्रदान करना

वर्षा ऋतु के समय और बाद में पौधों को सहारा देना बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य है कई बार अधिक वजन होने और फलों से लदे होने के कारण पौधे बिना सहारे के टूटने लगते है और उनका विकास नहीं हो पाता है। इसलिए पौधों को लकड़ी, बांस, या रस्सी आदि की सहायता से सहारा देना चाहिए। सहारा देने से पौधों की पत्तियाँ और फल आदि मिटटी के संपर्क में नहीं आ पाते जिससे उनमें मृदा जनित रोगों में कमी आती है और सूर्य का प्रकाश भी उचित मात्रा में मिल पाता है, फलस्वरूप पौधों और फलों की गुणवत्ता में सकरात्मक प्रभाव पड़ता है

कीट एव् बीमारियों का प्रबंधन

कीट प्रबंधन

फलवृक्षों में रस चूसक कीटों के नियंत्रण के लिए कार्बरिल (2 मी.ली./लीटर पानी) का दो से तीन छिड़काव

सप्ताह के अंतराल पर करना चाहिए। पत्ती खाने वाले कीटों से बचाव हेतु डाईमिथोएट (1 मी.ली. प्रति ली पानी) के 2–3 छिडकाव दस दिनों के अंतराल पर करने चाहिए। तना छेदक कीट जैसे सुंडी आदि की रोकथाम के लिए मोनोक्रोटोफास (2 मी.ली. प्रति ली पानी) का प्रयोग करना चाहिए।

रोग प्रबंधन

फलवृक्षों में वर्षा ऋतु में अत्यधिक नमी के कारण फफूंद जनित रोग बढ़ जाते हैं जिनसे पौधों पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जड़ गलन तथा विगलन की रोकथाम के लिए कापरओक्सीक्लोराइड (2 ग्राम प्रति ली पानी) अथवा रिडोमिल (2 ग्राम प्रति ली पानी) का छिडकाव पौधों तथा मिटटी में 10 दिनों के अंतराल पर करना चाहिए। बैक्टीरियल कैंकर : इस रोग का कारण पत्तियाँ, पतली शाखाओं तथा पौधों पर गोले तथा धब्बे बन जाते हैं रोकथाम के लिए स्ट्रेप्टोसाईक्लीन 1 ग्राम प्रति लीटर पानी की दर का तीन छिड़काव 10 दिनों के अंतराल पर करने से इस रोग से बचा जा सकता है।

पौधों की जड़ों के आस–पास मिट्टी चढ़ाना

फलवृक्षों में मिटटी चढाने की प्रक्रिया से पौधों को हवा, पानी तथा पोषक तत्व प्राप्त होते हैं। जिन पौधों में मिट्टी चढ़ाने की जरूरत पड़ती है उसमें से पानी नालियों द्वारा आसानी से निकाला जा सकता है। इससे मिट्टी भुरभुरी हो जाती है, और मिट्टी में नमी बनी रहती है। पौधों को मजबूत आधार मिलने से उनकी ताकत बढ़ती है। इससे आपके द्वारा डाली गई खाद का भी भरपूर उपयोग होता है, और कम खाद में ज्यादा उपज प्राप्त होती है। इस प्रकार से देखा जाए तो पौधों को एक मजबूत संरक्षण मिलने से पौधों का विकास अच्छी तरह से होता है।

मृदा उर्वरता एवं सिंचाई जल प्रबंधन

विनोद कुमार शर्मा, कपिल आत्माराम चोभे एवं इंदु चोपड़ा
मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विज्ञान संभाग,
भा.कृ.अनु.प. –भारतीय कृषि अनुसन्धान संसथान, नई दिल्ली–110012

अधिक उपज क्षमता वाली प्रजातियों के द्वारा पोषक तत्वों का मिट्टी से अपेक्षाकृत अधिक मात्रा में ग्रहण किया जाता है जो कि मृदा उर्वरता ह्रास का प्रमुख कारण है। आज भारतीय मृदायें बहु पोषक तत्वों (नाइट्रोजन, फॉस्फोरस, पोटाश, सल्फर, जस्ता, लौहा, मैंगनीज, बोरोन तथा मोलिब्डेनम) की कमी से ग्रसित हैं विशेष रूप से ऐसे स्थानों पर जहां उर्वरकों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का प्रयोग कम अथवा बिल्कुल नहीं किया गया वहां तत्वों की यह कमी बहुत ज्यादा हुई है। यही नहीं, उर्वरकों का असंतुलित प्रयोग भी इसके लिए काफी हद तक जिम्मेदार है।

केवल भारत ही नहीं बल्कि विश्वस्तर पर खाद्यान्नों की प्रति व्यक्ति उपलब्धता बढती हुई जनसंख्या के कारण निरन्तर घट रही है इसको रोकने के लिए खाद्यान्नों की उपज में निरन्तर बढोत्तरी अत्यन्त आवश्यक है जिसे उर्वरकों तथा अन्य उपायों के साथ–साथ कार्बनिक खादों का समुचित प्रयोग करके प्राप्त किया जा सकता है।

संतुलित पोषक तत्वों की पूर्ति के उपाय

1. **खेत की मिट्टी की जांच करायें** :– फसलों को संतुलित खुराक देने के लिए सर्वप्रथम मिट्टी की जांच आवश्यक है क्योंकि फसल को कितनी मात्रा में पोषक तत्वों की आवश्यकता हैं तथा भूमि में इन पोषक तत्वों की कितनी उपलब्धता है। इन सभी प्रश्नों के समाधान के लिए ही मिट्टी जांच कराना आवश्यक है।
2. **खुराक की पूर्ति सभी उपलब्ध संसाधनों का समेकित प्रयोग करें**:– इस बात को समझने के लिए आवश्यक है कि किसी एक पोषक तत्व की पूरी मात्रा की पूर्ति केवल एक साधन द्वारा नहीं करनी है। उदाहरण के लिए नत्रजन तत्व की पूर्ति केवल यूरिया डालकर भी की जा सकती हैं लेकिन ऐसा करने से भूमि के स्वास्थ्य पर प्रतिकूल असर होता हैं और धीरे–धीरे जमीन की पैदावार क्षमता कम हो जाती है। इसलिए जमीन की पैदावार क्षमता को बढाना हैं तो फसल की खुराक की पूर्ति के लिए हमें उपलब्ध कार्बनिक, अकार्बनिक तथा जैव संसाधनों को तर्कसंगत तरीके से उपयोग में लाना है।

(अ) जैविक खादों का प्रयोग :–

जैविक खादों का उपयोग करने से फसलों को सभी पोषक तत्व मिल जाते हैं, मृदा संरचना अच्छी हो जाती हैं तथा मिट्टी में लाभकारी जीवों की संख्या बढ जाती हैं जो जमीन की उपजाऊ शक्ति बढाने में मदद करते है। मुख्य रूप से जैविक खादों के लिए निम्नलिखित पदार्थो को शामिल किया जाना चाहिए।

1. **हरी खाद** :– हरी खाद के रूप में ढैंचा, सनई, मूँग, ग्वार आदि फसलों को हरी अवस्था में खेत में दबा देते हैं और पानी भरकर सड़ने देते है।
2. **गोबर खाद व कम्पोस्ट खाद** :– कम्पोस्ट खाद तैयार करने के लिए निम्नलिखित तरीकों में से किसान अपनी सुविधानुसार अपनाकर काम में ले सकते है।

- **सुपर कम्पोस्ट** :– इस खाद को बनाने के लिए निश्चित माप 15 x 6 x 3 फीट का गडढा तैयार करके उसमें विधिनुसार फसल अवशेष, घासफूस व गोबर को अच्छी प्रकार मिलाकर भर दें। प्रति गडढा 2 कट्टे सिंगल सुपर फॉस्फेट डालें। नमी की आवश्यक मात्रा बनाये रखने के लिए समय–समय पर पानी का छिड़काव जरूरी है।
- **नेडेप कम्पोस्ट** :– इस विधि में गडढे के स्थान पर जमीन के उपर ईटों का टांका बनाया जाता है। टांके

के अंदर हवा का आवागमन बनाये रखने के लिये दीवार में छिद्र छोड़े जाते हैं।

- **वर्मी कम्पोस्ट** :– केंचुओं से तैयार खाद वर्मी कम्पोस्ट कहलाती है। केंचुए की ईपीगीज प्रजाति जीवांश पदार्थ को खाकर अच्छी कम्पोस्ट खाद बनाती है।
- **प्रोम जैविक खाद** :– प्रोम जैविक खाद बनाने में गोबर की खाद तथा रॉक फॉस्फेट पाउडर काम में लिया जाता है। फसलों को फॉस्फोरस तत्व की आपूर्ति के लिए उपयोग में लिये जाने वाले उर्वरकों जैसे सुपर फॉस्फेट व डी.ए.पी. के विकल्प के रूप में प्रोम को अपनाया जा सकता है।
- **खली** :– तेल वाली फसलों से तेल निकालने के बाद खलियों का इस्तेमाल खाद के रूप में किया जा सकता है। जैसे नीम की खली, अरण्डी की खली, मूंगफली की खली, करंज की खली, रतनजोत की खली आदि।

(ब) जैव उर्वरकों का प्रयोग (बायो फर्टिलाइजर्स)

नत्रजन तत्व की पूर्ति हेतु

- **राइजोबियम कल्चर** :– दलहनी फसलों के लिए राइजोबियम कल्चर का प्रयोग करें। एक हेक्टेयर क्षेत्र के लिए 200 ग्राम के तीन पैकेट से बीज उपचारित करें।
- **एजेटोबेक्टर एवं एजोस्पाइरीलम कल्चर** :– बिना दाल वाली सभी फसलों के लिए उपरोक्तानुसार काम में लाऐं। रोपाई वाली फसलों के लिए, 2 पैकेट कल्चर को 10 लीटर पानी के घोल में पौधे की जड़ों को 15 मिनट तक डुबोकर रखने के बाद रोपाई करें।

फॉस्फोरस को घुलनशील बनाने हेतुः–

- **पीएसबी कल्चर** :– रासायनिक उर्वरकों द्वारा दिये गये फॉस्फोरस का बहुत बड़ा भाग जमीन में अघुलनशील होकर फसलों को मिल नहीं पाता हैं। पीएसबी कल्चर फॉस्फोरस को घुलनशील बनाकर फसलों को उपलब्ध कराता है। बीजोपचार उपरोक्तानुसार करें या 2 किलों (10 पैकेट) कल्चर को 100 किलो गोबर की खाद में मिलाकर खेत में मिला देवें।
- **वैम कल्चर** :– वैम कल्चर फॉस्फोरस के साथ साथ दूसरे सभी तत्वों की उपलब्धता बढा देता है। बीजोपचार उपरोक्तानुसार करें।

(स) अकार्बनिक पदार्थ एवं रसायनिक उर्वरकों का प्रयोगः–

पोषक तत्वों की पूर्ति हेतु मुख्य रूप से उपयोग में आने वाले उर्वरक निम्नलिखित हैं –

उर्वरक का नाम	उपस्थित पोषक तत्व	उपयोग का तरीका
यूरिया	नत्रजन 46 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में डाले तथा खड़ी फसल में बिखेरकर दें, या कमी के लक्षण दिखाई देने पर 2 प्रतिशत घोल का छिड़काव करें।
कैन	नत्रजन 26 प्रतिशत कैल्शियम 20 प्रतिशत	बुवाई के समय कूडों में डालें तथा खडी फसल में बिखेरकर दें।
अमोनियम सल्फेट	नत्रजन 20.6 प्रतिशत सल्फर 23 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
अमोनियम फॉस्फेट सल्फेट	नत्रजन 16 प्रतिशत फॉस्फोरस 20 प्रतिशत सल्फर 13 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
एस.एस.पी.	फॉस्फोरस 16 प्रतिशत सल्फर 11 प्रतिशत कैल्शियम 21 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
डीएपी	फॉस्फोरस 46 प्रतिशत नत्रजन 20 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
नाइट्रोफॉस	फॉस्फोरस 20 प्रतिशत नत्रजन 20 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
म्यूरेट ऑफ पोटाश	पोटाश 60 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
पोटाशियम सल्फेट	पोटाश 50 प्रतिशत सल्फर 17.5 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।

एनपीके	नत्रजन 12 प्रतिशत फॉस्फोरस 32 प्रतिशत पोटाश 16 प्रतिशत	बुवाई के समय कूड़ों में प्रयोग करें।
जिंक सल्फेट हेप्टाहाईड्रेट	जिंक 21 प्रतिशत सल्फर 10 प्रतिशत	25 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय खेत में मिलाकर दें या खड़ी फसल में 0.5 प्रतिशत जिंक सल्फेट + 0.25 प्रतिशत चूना घोल का छिड़काव करें।
जिंक चिलेट	जिंक 12 प्रतिशत	10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय खेत में प्रयोग करें।
फैरस सल्फेट	लोहा 19 प्रतिशत सल्फर 10.5 प्रतिशत	15 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर बुवाई के समय खेत में मिलायें या सल्फर खडी फसल में 0.4 प्रतिशत फेरस सल्फेट + 0.2 प्रतिशत चूना घोल बनाकर छिड़काव करें।
कॉपर सल्फेट	तांबा 24 प्रतिशत सल्फर 12 प्रतिशत	खड़ी फसल में 0.2 प्रतिशत कॉपर सल्फेट+ 0.1 प्रतिशत चूना घोल बनाकर छिड़काव करें।
बोरेक्स	बोरोन 10.5 प्रतिशत	बोरेक्स पाउडर बुवाई के समय 5 से 10 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर
प्राकृतिक पदार्थ		
जिप्सम	सल्फर 13 प्रतिशत कैल्शियम 19 प्रतिशत	बुवाई के समय 250 किलोग्राम प्रति हेक्टेयर प्रयोग करें
रॉक फॉस्फेट	फॉस्फोरस 18 प्रतिशत	देशी खाद के साथ सड़ाकर बुवाई से पूर्व खेत में डालें।

सिंचाई जल प्रबंधन

सिंचाई जल का कृषि (खेती) में फसलों की आवश्यकतानुसार जल का उपयोग करने से अधिक अधिक फसल उत्पादन लेने की प्रक्रिया को जल प्रबन्धन कहते हैं जिसके के लिए सिंचाई जल उपयोग की उन्नति प्रणाली का प्रयोग करना आवश्यक है जिसमें सिंचाई जल का कम से कम मात्रा में उपयोग करने के बाद या सिंचाई जल का दोहन दुरूपयोग रोकने के उपरांत अधिक फसल उत्पादन प्राप्त होता है।

सिंचाई जल की कमी के कारण

1. औसत वर्षा में निरंतर गिरावट
2. प्रति व्यक्ति जल की खपत में वृद्धि
3. जनसंख्या में वृद्धि
4. भू जल स्तर में निरंतर गिरावट
5. जल गुणवत्ता की समस्या
6. जल का आवश्यकता से ज्यादा दोहन
7. किसानों में जागरूकता का अभाव

सिंचाई जल की गुणवत्ता

सिंचाई जल की गुणवत्ता सामान्यतया उसमें उपस्थित लवणों आदि पर निर्भर करती है। सिंचाई जल में प्रायः कुछ तत्व निश्चित मात्रा में घुले होते हैं मूल रूप से घुले हुए पदार्थों, लवणों खनिजों आदि की प्रकृति एवं गुणवत्ता, जल के स्रोत पर निर्भर करती है। जल की गुणता उचित न होने पर कृषि उत्पादन पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। इसलिए जल को उपयोग करने से पहले गुणवत्ता की जांच करना आवश्यक है, जिससे कृषि में भरपूर उत्पादन लिया जा सके।

सिंचाई जल, कृषि का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है सिंचाई जल एवं मृदा में अकार्बनिक खनिज, लवणों की कुछ सांद्रता आवश्यक है, जो पौधों के लिए पोषक तत्वों के रूप में कार्य करती है। लेकिन इन तत्वों की मात्रा अत्यधिक हो जाने से फसल पर उसका प्रतिकूल प्रभाव पड़ता है। जिसमें सिंचाई जल में अधिक मात्रा में उपस्थित लवण या आयन एक बहुत बड़ी समस्या है। जिससे मिट्टी का खारा या लवणीय और क्षारीय हो जाना एक धीमी प्रक्रिया है इसलिए इसकी जानकारी पहले से होनी चाहिए अन्यथा इसकी अधिकता होने से भारी नुकसान पहुंचता है।

इसलिए यहाँ पर सिंचाई की उन्नति प्रणाली प्रयोग में करना आवश्यक हो जाता है।

1. ड्रिप सिंचाई प्रणाली (टपक या बूंद–बूंद सिंचाई)

टपक या बूंद–बूंद सिंचाई एक ऐसी सिंचाई विधि है जिसमें पानी थोड़ी–थोड़ी मात्रा में, कम अन्तराल पर, प्लास्टिक की नालियों द्वारा सीधे पौधों की जड़ों तक

पहुंचाया जाता है। टपक सिंचाई के माध्यम से पौधों को उर्वरक आपूर्ति करने की प्रक्रिया फर्टिगेशन कहलाती है, जो कि पोषक तत्वों की लीचिंग व वाष्पीकरण नुकसान पर अंकुश लगाकर सही समय पर उपयुक्त फसल पोषण प्रदान करती है। परम्परागत सतही सिंचाई (conventional irrigation) से जल का उचित उपयोग नहीं हो पाता, क्योंकि अधिकतर पानी, जोकि पौधों को मिलना चाहिए, जमीन में रिस कर या वाष्पीकरण के कारण व्यर्थ हो जाता है। अतः उपलब्ध सिंचाई जल का सही और पूर्ण उपयोग करने के लिए एक ऐसी उन्नति सिंचाई पद्धति अनिवार्य है जिसके द्वारा जल का रिसाव कम से कम हो और अधिक से अधिक पानी पौधे को उपलब्ध हो।

टपक सिंचाई पद्धति की मुख्य विशेषताएँ

- पानी सीधे फसल की जड़ में दिया जाता है।
- जड़ क्षेत्र में पानी सदैव पर्याप्त मात्रा में रहता है।
- जमीन में वायु व जल की मात्रा उचित स्थिति पर बनी रहने से फसल की वृद्धि तेजी से और एक समान रूप से होती है।
- फसल को हर दिन या एक दिन छोड़कर पानी दिया जाता है।
- पानी अत्यंत धीमी गति से दिया जाता है।

टपक सिंचाई के लाभ

- **उत्पादकता और गुणवत्ता** : टपक सिंचाई में पेड़ पौधों को प्रतिदिन जरूरी मात्रा में पानी मिलता है। इससे फसल पर तनाव नहीं पड़ता। फलस्वरूप फसलों की बढ़ोतरी व उत्पादन दोनों में वृद्धि होती है। टपक सिंचाई से फल, सब्जी और अन्य फसलों के उत्पादन में 20% से 50% तक बढ़ोतरी संभव है।
- **पानी** : टपक सिंचाई द्वारा 30 से 60 प्रतिशत तक सिंचाई जल की बचत होती है।
- **जमीन** : ऊबड़–खाबड़, लवणयुक्त, बंजर जमीन, शुष्क खेती वाली, पानी के कम रिसाव वाली जमीन और अल्प वर्षा की लवणयुक्त जमीन और समुद्र तटीय जमीन भी खेती हेतु उपयोग में लाई जा सकती है।
- **रासायनिक खाद** : फर्टिगेशन से पोषक तत्व बराबर मात्रा में सीधे पौधों की जडों तक जाते हैं, जिसकी वजह से उपयुक्त मात्रा में पोषक तत्वों पौधों को प्राप्त होते हैं और फसल पैदावार में वृद्धि होती है। जिससे उर्वरक उपयोग दक्षता बढ़ जाती है इस पद्धति द्वारा 30 से 45 प्रतिशत तक रसायनिक खाद की बचत की जा सकती है।
- **खरपतवार** : टपक सिंचाई में पानी सीधे फसल की जड़ों में दिया जाता है तथा आस–पास की जमीन सूखी रहने से अनावश्यक खरपतवार विकसित नहीं होते। जिसके कारण पौष्टिक तत्व की मात्रा केवल फसल को ही प्राप्त होती है।
- **फसल में कीट व रोग का प्रभाव** : टपक सिंचाई से पेड़–पौधे स्वस्थ होने के कारण कीट तथा रोगों से लड़ने की ज्यादा क्षमता बढ़ जाती है। कीटनाशकों पर होने वाले खर्चे भी कम हो जाते हैं।
- **टपक सिंचाई में होने वाला खर्च और कार्यक्षमताः** टपक सिंचाई पद्धति से सिंचाई करने से जड़ के क्षेत्र को छोड़कर बाकी भाग सूखा रहता है और निराई–गुड़ाई, खुदाई, कटाई आदि काम बेहतर ढंग से किये जा सकते हैं। जिससे इन कृषि क्रियाओं पर होने वाले खर्च (पैसों) की बचत होती है।

2. फुहारा (स्प्रिंकलर) सिंचाई तकनीक

फुहारा (बौछारी) या स्प्रिंकलर विधि से सिंचाई में पानी को छिड़काव के रूप में दिया जाता है। पानी की बचत और अधिक फसल पैदावार के लिहाज से फुहारा सिंचाई प्रणाली अति उपयोगी और वैज्ञानिक विधि मानी गई है। किसानों में फुहारा सिंचाई के प्रति काफी उत्साह देखा जा रहा है। इस सिंचाई तकनीक से कई फायदे हैं।

हमारे यहां फुहारा और बूंद–बूंद सिंचाई पर ज्यादा ध्यान दिया जाए तो न केवल उत्पादन बढ़ाया जा सकता है बल्कि खेती में होने वाले खर्चों को भी कम किया जा सकता है। असमतल भूमि और ऊंचाई वाले क्षेत्र में भी फुहारा (बौछारी) या स्प्रिंकलर विधि से सिंचाई करने से खेती की जा सकती है। इस तकनीक के प्रयोग से श्रम

की भी बचत होती है। फुहारा से पानी सीधी पौधों पर ही गिरता है। कृषि में इस तकनीक के उपयोग से फसल पैदावार एवं गुणवत्ता में वृद्धि के साथ उत्पादन लागत में भी कमी लायी जा सकती है।

फुहारा (बौछार) सिंचाई प्रणाली की क्रिया विधिः

फुहारा (बौछार) सिंचाई में पम्प द्वारा दबाव के साथ नली में पानी भेजा जाता है जिससे फसल पर फुहारा द्वारा बौछार रूप में जल का छिड़काव होता है। मुख्य नली बगल की नलियों से जुड़ी होती है। बगल की नलियों में पानी उठाने वाली नली जुड़ी होती है।

पानी उठाने वाली नली जिसे राइजर पाइप कहते हैं, इसकी लम्बाई फसल की ऊँचाई पर निर्भर करती है। हमेशा राइजर पाइप की ऊँचाई फसल की ऊँचाई से अधिक रखते हैं। पानी छिड़काव वाले हेड घूमने वाले होते हैं जिन्हें पानी उठाने वाले पाइप से जोड़ दिया जाता है।

पानी छिड़कने वाले यंत्र भूमि के पूरे क्षेत्रफल पर अर्थात फसल के ऊपर पानी बौछार रूप में छिड़कते हैं। दबाव के कारण पानी काफी दूर तक छिड़क जाता है। जिससे सिंचाई होती है।

फुहारा (बौछार) सिंचाई से लाभः

फुहारा (बौछार) सिंचाई के निम्नलिखित लाभ हैं। जैसे–सतही सिंचाई में पानी खेत तक पहुँचने में 15–20 प्रतिशत तक अनुपयोगी रहता है।

1. परम्परागत सिंचाई में समानरूप से पानी खेत में नहीं पहुँचता जबकि फुहारा (बौछार) सिंचाई से सिंचित क्षेत्रफल 1.5 –2 गुना बढ़ जाता है अर्थात् इस विधि से सिंचाई करने पर 25–50 प्रतिशत तक पानी की सीधे बचत होती है।
2. जब पानी वर्षा की भांति (बौछार) छिड़का जाता है तो भूमि पर जल भराव नहीं होता है जिससे मिट्टी की पानी सोखने की दर की अपेक्षा छिड़काव कम होने से पानी के बहने से हानि नहीं होती है।
3. जिन जगहों पर भूमि ऊँची–नीची रहती है वहाँ पर सतही सिंचाई संभव नही हो पाती उन जगहों पर फुहारा सिंचाई वरदान साबित होती है।
4. फुहारा सिंचाई बलुई मिट्टी एवं अधिक ढाल वाली तथा ऊंची –नीची जगहों के लिए उपयुक्त विधि है। इन जगहों पर सतही विधि से सिंचाई नहीं की जा सकती है।
5. इस विधि से सिंचाई करने पर मृदा में नमी का उपयुक्त स्तर बना रहता हैं जिसके कारण फसल की वृद्धि, उपज और गुणवत्ता अच्छी रहती है।
6. इस विधि में सिंचाई के पानी के साथ घुलनशील उर्वरक, कीटनाशी तथा जीवनाशी या खरपतवारनाशी दवाओं का भी प्रयोग आसानी से किया जा सकता है।
7. पाला पड़ने से पहले फुहारा सिंचाई पद्धति से सिंचाई करने पर तापक्रम बढ़ जाने से फसल का पाले से नुकसान नहीं होता है।
8. पानी की कमी, सीमित पानी की उपलब्धता वाले क्षेत्रों में दुगुना से तीन गुना क्षेत्रफल सतही सिंचाई की अपेक्षा किया जा सकता है।

रखरखाव एवं सावधानियाँ

बौछारी सिंचाई के प्रयोग के समय एवं प्रयोग के बाद परीक्षण कर लेना चाहिए और कुछ मुख्य सावधानियाँ रखने से सेट अच्छी तरह चलता है। जैसे– प्रयोग होने वाला सिंचाई जल स्वच्छ तथा बालू एवं अत्यधिक मात्रा घुलनशील तत्वों से युक्त नहीं होना चाहिए तथा उर्वरकों, फफूंदी/खरपतवारनाशी आदि दवाओं के प्रयोग के पश्चात सम्पूर्ण प्रणाली को स्वच्छ पानी से सफाई कर लेना चाहिए।

प्लास्टिक वाशरों को आवश्यकतानुसार निरीक्षण करते रहना चाहिए और बदलते रहना चाहिए। रबर सील को साफ रखना चाहिए तथा प्रयोग के बाद अन्य फिटिंग भागों को अलग कर साफ करने के उपरान्त शुष्क स्थान पर भण्डारित करना चाहिए।

3. पलवार बिछाना/आच्छादन

इस क्रिया (पलवार बिछाना) के लिए गोबर की खाद, पुआल, सूखी घास इत्यादि को खेत में सतह पर बिछा देते हैं कार्बनिक पदार्थों को आच्छादन के रूप में प्रयोग

करने से मृदा की उर्वरा शक्ति बढ़ती हैं, क्योंकि ये धीरे–धीरे विघटित होते हैं तथा मृदा में पोषक तत्वों को बढ़ाते है। साथ ही साथ मृदा नमी को अधिक समय तक बनाये रखने में इनकी महत्त्व पूर्ण भूमिका होती है

पलवार बिछावन (आच्छादन) के लाभ–

1. फसल को कम सिचांई की आवश्यकता पड़ती है क्योंकि वाष्पीकरण के द्वारा होने वाले पानी पुनः मृदा में पहुँच जाता है।
2. सर्दी में पलवार बिछावन/आच्छादन करने से मृदा तापमान को बढ़ाया जा सकता है जबकि गर्मियों में कार्बनिक पदार्थों के बिछावन/आच्छादन प्रयोग करने से मृदा तापमान में कमी आती है।
3. पलवार बिछावन/आच्छादन करने से खरपतवार नियन्त्रित रहता है। शोधों द्वारा पाया गया है काली पॉलीथिन के नीचे खरपतवार नहीं उगता है।
4. पलवार बिछावन/आच्छादन करने से फसल में लगने वाली मृदा सबन्धी बीमारियों की रोकथाम आसानी से किया जा सकता है।
5. मृदा का हवा तथा जल द्वारा अपरदन नहीं होता है।

पलवार बिछावन/आच्छादन करते समय निम्नलिखित बातों का ध्यान रखना चाहिए।

1. पलवार बिछावन के लिए कभी भी सूखी भूमि का चुनाव न करें। हमेशा नमी युक्त भूमि का चयन करें। यदि भूमि सूखी हो तो एक दिन पहले हल्की सिंचाई कर दें।
2. बीजों को लगाने के लिए पलवार बिछावन की परत 10 सेमी0 से कम होनी चाहिए।
3. यदि पलवार बिछावन का प्रयोग खरपतवार नियन्त्रण के लिए हो तो परत 10 सेमी0 से मोटी होनी चाहिए।
4. यदि फसल एकवर्षीय हो तो 20–25 माइक्रोन वाली मोटी पॉलीथिन फिल्म का प्रयोग करना चाहिए। यदि फसल द्विवर्षीय हो तो 40–50 माइक्रोन वाली मोटी पॉलीथिन फिल्म का प्रयोग तथा फसल बहुवर्षीय हो तो 50–100 माइक्रोन मोटी पॉलीथिन का प्रयोग उत्तम माना जाता है।

संरक्षित खेती में सूत्रकृमि एवं सूक्ष्म जीवों के पारस्परिक संबंधः एक जटिल समस्या

पंकज, हरेंद्र कुमार, अभिषेक गौडा एवं सोनी
भा.कृ.अ.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

इस साल अनाज का उत्पादन 295.6 मिलियन टन होने की उम्मीद है । इस उत्पादन क्षमता को बनाये रखना एक चुनौती है । फसलोंत्पादन में समस्याएं भी अनेक है, जैसे कि कीट, रोग, सूत्रकृमि, चूहे तथा खरपतवार जिनसे लगभग 18–30 प्रतिशत का खाद्यान नष्ट हो जाता है । साधारणतया सूत्रकृमि दो प्रकार के होते हैं ।

लाभदायक/कीटरोगजनक सूत्रकृमि

स्टेनरनेमा व हैटरोरैबडाईटिस नामक सूत्रकृमि हर प्रकार की झल्लियों को 24–48 घण्टों में मारने की क्षमता रखते हैं। इन सूत्रकृमियों के तृतीय पीढी के संक्रामक तरूणों में क्रमशः जीनोरैब्डस व फोटोरैब्डस प्रजाति के सहभोजी जीवाणु पाये जाते हैं। इन सूत्रकृमियों को पानी व आलजिनेट दानों के माध्यम से कीट ग्रसित खेतों में छिड़का जा सकता है।

हानिकारक सूत्रकृमि

पादप परजीव सूत्रकृमि (निमेटोड) धागे की तरह करीब 20 प्रतिशत आम सूत्रकृमि की संख्या के आधार पर मिट्टी में रहने वाले प्राणी है । जो फसलों की जड़ों पर परजीवी के रूप में रहकर पौधों के भोजन पर ही अपना जीवन निर्वाह करते हैं। बहुसंख्यी कोशिका वाले प्राणी जगत में सूत्रकृमि सर्वाधिक संख्या में पाये जाते हैं । यदि हम प्राकृतिक पर्यावरण के आधार को देखें । खेती करने योग्य मिट्टी के करीब 1.2X1010 कृमि प्रति हेक्टेयर में उपलब्ध हो सकते हैं । स्वतंत्र रूप से निर्वाह करने वाले कृमि सड़े कार्बनिक खाद पर विकसित रहते हुए पर्यावरण परिपेक्ष में हो रहे कार्य/सेवाओं में निरंतर योगदान प्रदान कर पर्यावरण का संतुलन बनाये रखने में सहायक है।

परजीव कृमि भोजन करने वाली क्रिया के आधार पर कई प्रकार की विविधता दर्शातें हैं – इनमें जमीन के भीतर रहने वालों व पौधे के ऊपरी भाग जैसे पत्ती एंव फूल के परजीव हैं जिससे ये बहुफसली परजीव बनकर अपने आपको विभिन्न वातावरण में अनुकूलता प्रदान करते हैं। सूत्रकृमि द्वारा पौधों की ऊपरी सतह में क्षति के उपरान्त पौधों के कुछ पदार्थों का रिसाव होता है जो कि वहां रह रहे जीवों को प्रभावित करने की क्षमता रखता है। सूत्रकृमि के ऊपरी भाग में एक सूई जैसा तंत्र होता है जिसे वह जड़ों की कोशिकाओं को अन्दर तक भेदकर अपना खाद्य पदार्थ को लेता है। जिससे जड़ों में घाव द्वारा क्षति पहुंचती है। जब जड़ों में इस प्रकार की क्षति होती है तब अन्य सूक्ष्म जीव को जड़ों के तल में प्रवेश करने का अवसर मिलता है जो कि अन्यथा मिट्टी में ही रह जाते हैं न्यूनतम संख्या में सूत्रकृमि न कि सूक्ष्म जीवों को जड़ों में प्रवेश के लिए सहायक है अपितु यह पौधों के रक्षा तंत्र व प्रतिरोधक क्षमता को भी प्रभावित करता है । चूंकि सूत्रकृमि पर्यावरण में विभिन्न भूमिका निभा रहे हैं जिसके कारण यह एक महत्वपूर्ण प्राणी समझा जा सकता है।

पॉलीहाउस फसलों की मुख्य सूत्रकृमि समस्याएँः–

1 जड़–गांठ सूत्रकृमि

2 वृक्काकार सूत्रकृमि

3 मूल विक्षत या लीजन सूत्रकृमि

4 बाह्य परजीवी सूत्रकृमि

- हौपलोलैमस
- हैलिकोटाइलैंकस
- टाइलैंकोरिहंकस

सूत्रकृमियों द्वारा फसलों में हानिः–

कृषि परिवेश में आमतौर पर सूत्रकृमि द्वारा पौधों की उपज में 12-20 प्रतिशत की क्षति होती है अपितु यह

नुकसान सूत्रकृमि की संख्या पर मुख्यतः एवं पौधें की प्रगति व वातावरण पर भी निर्भर है जिससे फसल को नुकसान पहुँचाती है। जिसका औसतन मूल्यांकन 2000 करोड़ रूपये तक हो सकता है। उपज में नुकसान आमतौर पर गरम ऋतु वाले क्षेत्रों में अधिक देखा गया है। वनस्पति **सर्द** ऋतु वालों क्षेत्रों में कम देखा गया है। जबकि सर्द ऋतु की कृमि कुछ भिन्न है वे भी बहुतायत तक टन देय के लिए तत्पर है।

इससे फसल पैदावार की हानि का प्रभाव किसान के साथ–साथ अपने देश की आर्थिक स्थिति पर भी पड़ता है। परन्तु कुछ फसलें– गेहूं, धान व सब्जियों में सूत्रकृमि का ज्यादा प्रकोप होने से फसल उत्पादन में 20 से 50 प्रतिशत तक की हानि होती है। सभी प्रकार की फसलों का उत्पादन ठीक रखने व आर्थिक नुकसान कम करने के लिए पादप परजीवी सूत्रकृमि का उचित प्रबन्धन करना अति आवश्यक है।

सूत्रकृमि पौधों की जड़ों में घाव उत्पन्न करके नई प्रकार की कोशिकायें बनाते हैं जिससे पौधों में खाद्य पदार्थ, पानी व लवण सोखना व उनका वितरण प्रभावित होता है। इसी कारण फसल में खाद्य पदार्थ की कमी के लक्षण उत्पन्न होते हैं और दिन के समय में पौधे मुरझाये से नजर आते हैं। इस प्रकार के लक्षण फसल में खाद व पानी डालकर भी ठीक नहीं किये जा सकते। इस प्रकार सूत्रकृमि पौधों में रोग उत्पन्न करके फसल को भारी क्षति पहुंचाते हैं जिसके परिणाम स्वरूप पैदावार भी कम हो जाती है। सूत्रकृमि 2 से 3 महीने में आश्रयदायी फसल पर 25 से 30 डिग्री सेन्टीग्रेड तापमान पर 3 से 4 जीवन चक्र पूरे कर लेता है। प्रजनन द्वारा सूत्रकृमि 40 से 1000 तक अण्डे देकर अपनी संख्या को बढ़ाते हैं। फसलों पर अनेक प्रकार के पादप परजीवी सूत्रकृमि पाये जाते हैं। कुछ सूत्रकृमि जड़ों की ऊपरी सतह पर रहकर भोजन करते हैं तो कुछ जड़ों में आधे अन्दर और आधे बाहर रहकर तथा कुछ जड़ों में पूरे अन्दर घुसकर अपना जीवन निर्वाह करते हैं। पौधों की जड़ों में अन्दर घुसकर, जीवन निर्वाह करने वाले सूत्रकृमि फसल को सबसे ज्यादा हानि पहुंचाते हैं। फसल कटने पर ये सभी सूत्रकृमि जड़ों के साथ मिट्टी में रह जाते हैं और कुछ खरपतवारों के पौधे पर अपना जीवन शुरू कर देते हैं और अपनी संख्या को बढ़ाते रहते हैं।

संरक्षित खेती में फसलों का उत्पादन

पॉलीहाउस (पॉलीघर) आज के समय की एक नवीनतम तकनीक है। यह ऊँची कीमत वाली व गैर मौसमीय फसलों के लिये बहुत उपयोगी है । यह फसल पैदावार की खास प्रणाली है। पॉलीघर के निर्माण के लिये भारत सरकार भी इसे बढ़ावा दे रही है। पॉलीघर में खीरा, टमाटर, चैरी, करेंला व शिमला मिर्च (लाल, हरी, पीली) सब्जियॉ आदि और कटफ्लावर में गुलाब, जरवेरा, ग्लाइडोलस, रजनीगन्धा व गुलदउदी आदि सब की पैदावार ले सकते हैं। यह प्रणाली किसानों द्वारा अधिक तेजी से अपनाई जा रही है। क्योकि पॉलीघर में फसलों पर कीटपतंगों, विभिन्न रोगों व मौसम का प्रकोप कम होता है, जिससे–कीटनाशी/रोगनाशी का प्रयोग कम करते है। इसी कारण पॉलीघर में उगाई सब्जियॉ साफ–सुथरी व आर्गेनिक सब्जियों की श्रेणी में आती है और बाजार में अन्य सब्जियों की अपेक्षा ऊँची दर पर बिकती है व प्रति वर्गमीटर फसल पैदावार अधिक होती है। पॉलीघर में बिना मौसम की सब्जियॉ उगाकर व बाजार में ऊँची दर पर बेचकर और कम क्षेत्र में अधिक उत्पादन करके अधिक लाभ कमा सकता हैं।

ऐसा पाया गया है कि सूत्रकृमि अकेले पैदावार में 15 प्रतिशत की गिरावट के लिए उत्तरदायी है एवं अन्य जीवों के साथ मिलकर यह क्षति बढ़कर 25–30 प्रतिशत की हो जाती है। इसके अलावा सूत्रकृमि फसलों की प्रतिरोधकता में भी कमी का एक कारक होता है। फैलाव व संख्या के आधार पर, पादप परजीव सूत्रकृमियों में जड़गांठ, गुर्देनुमा, घान्य पुट्टी कृमि आदि प्रमुख है।

कृमि व फफूंद का पारस्परिक संबंध : सूत्रकृमि या फफूंद में कौन सा प्राणी हावी होकर फसल के रोग शैली को बदलता है। यह निर्भर करता है कि फसल के लिए कौन प्राथमिकता पाता है। जड़गांठ कृमि व फफूंद का पारस्परिक संबंध पौधों के रोग प्रक्रिया में मान्य है। फफूंद जो मिट्टी में निवास करती है व मिट्टी द्वारा उत्पन्न होने के लिए जानी जाती है उनमें पौधों को सुखाने वाली व सड़न पैदा करने वाली प्रमुख हैं। इसके अलावा अजीव कारक एवं समय भी बीमारी शैली को परिवर्तित करते हैं। ऐसा भी मानते हैं कि सूत्रकृमि फफूंदों के लिए समता व

अनुकूलता का वातावरण प्रस्तुत करते हैं। आरम्भ में जो कि बाद में सूत्रकृमियों के लिए विनाशकारी सिद्ध होता है जिसे परिस्थिति में समझौता, सम्भोक्ता, विरोधी व दोस्ताना जैसा परिभाषित किया गया है। इस प्रकार के जैविक सम्बन्ध रोक–टोक प्राकृतिक प्रणाली के अभिन्न अंग हैं और एक तंत्र को संतुलित रखने में अपनी भूमिका निभाते हैं। इसका तात्पर्य है कि किसी भी प्राणी की उत्पत्ति, फैलाव व गुणात्मकता एक सीमा तक होती है जिसकी एक त्रिकोणी खाद्य सहिंता के तहत नियोजित है। इस प्रकार जीवों में परस्पर संबंध प्रकृति की देन है। इन सम्बन्धों में बदलाव होता है यदि कोई दूसरा कारक/मध्यम में आता है जिससे सम्बन्धों में उलझन बन जाती है और घटना क्रम में संशोधन हो जाता है। फफूंद जो कि फसलों में सड़न उत्पन्न करती है आमतौर पर संकाओं/गैर जरूरी जैसे जीव की श्रेणी में आती है जिनकी प्रवृत्ति अभिव्यक्ति में बदलाव का वातावरण नियोजित होता है। एक दूसरे को पहचानने की प्रक्रिया इस प्रकार के संबंध में स्थूल है। पौधों के ऊपर अब यह दिशा निर्देशित है या अपने आप बनता बिगड़ता है कहना मुश्किल होगा। लेकिन आपसी संबंध हाथ व दस्ताने जैसा है। जो आंशिक तौर से दर्शाता है इस प्रकार का संबंध इस प्रकार की प्रक्रिया जैविक व कार्बनिक तत्व मिट्टी की भौतिक–रासायनिक गुणों को प्रभावित करते हैं। समयानुसार जीवों में उन्नति पारम्परिक संबंधों का निवारण एक प्रकार को वैज्ञानिकों के लिए चुनौती भी है।

इस प्रकार फफूंद व जीवाणु सूत्रकृमि से मिलकर रोगों की प्रक्रिया को आंशिक रूप से प्रभावित कर फसलों में हो रहे नुकसान को नया रूप प्रदान करते हैं। इस प्रकार से उत्पन्न समस्या में जरूरी है किस जीव को नियंत्रित किया जाए। सर्वप्रथम स्वाभाविक है सूत्रकृमि को प्रतिबंधित कर दूसरे जीवों को भी नियंत्रित कर पाना संभव हो। इनमें कृषि कार्य विधियों से फसल चक्र, कार्बनिक खाद का उपयोग, गर्मियों में खेत की जुताई, समय पर सिंचाई में परिवर्तन आदि शामिल हैं।

रोग का मुख्य कारण

- दूषित मिट्टी या मिट्टी का मिश्रण
- मोनोक्रॉपिंग
- सक्रंमित रोपण सामग्री
- जुताई गतिविधियां
- अधिक मात्रा में ड्रीप जल का प्रयोग

प्रबन्धन

सूत्रकृमि व सूक्ष्म जीवें मिलकर एक कुटिल रोग का परिणाम देते हैं एवं रोग से फसल की उपज में हानि आर्थिक दृष्टि से अधिक हो जाती है। इस प्रकार की समस्याओं के निदान हेतु, प्रारंभिक जीव/कीट के नियंत्रण हेतु मुख्यता प्रयास करें परन्तु दूसरे कीट की संख्या को न्यूनतम बनाये रखने के प्रयास अवश्य हों। यद्यपि सूत्रकृमि की संख्या अधिक होने पर सूत्रकृमि नाशक रसायन जैसे कार्बोफ्यूरान 1 किलोग्राम सक्रीय तत्व का उपयोग खेत के बिजाई के साथ लाइनों में करें तथा बीज उपचार काबोफ्यूरान 1 प्रतिशत से करने पर इस रसायन का प्रयोग फसल के मध्य में और भी कर सकते हैं। सूत्रकृमि की संख्या को नियंत्रित करके फसल अन्य गैर जरूरी परजीवों को भी न्यूनतम किया जा सकता है परन्तु अन्य जीवों के नियंत्रण हेतु कुछ फफूंदनाशक का उपयोग अवश्य करें।

सूत्रकृमि प्रबन्धन हेतु आसान व सहज विधियॉ इस प्रकार है :

मिट्टी की जांच :– नए पॉलीहाउस बनाने से पूर्व पौध/नर्सरी सूत्रकृमि रहित लेने के लिये सूत्रकृमि की उपस्थिति जानने हेतु मिट्टी की जांच कराये जो कि सूत्रकृमि विज्ञान संभाग, भा.कृ.अनु.सं., नई दिल्ली से करवाई जा सकती है। यदि मिट्टी में सूत्रकृमि है तो कार्बोफ्युरान 3.5 ग्राम प्रति वर्गमीटर के हिसाब से नर्सरी की क्यारी में मिलाकर बीज बोआई करें ।

सूत्रकृमि मुक्त पौधः– पॉलीघर उपचार के बाद स्वस्थ नर्सरी पौध लगाना आवश्यक है, जिससे सूत्रकृमि नियन्त्रित रहेगा, इसलिये टमाटर, मिर्च, खीरा, करेंला की नर्सरी लगाने से पहले कार्बोफ्यूरान–3जी, 3.5 ग्राम प्रति मी0 के हिसाब से नर्सरी की मि्टटी में मिला दें, बाद में बीज बोयें। इससे सूत्रकृमि रहित स्वस्थ नर्सरी पैदा होगी। बिना उपचारित नर्सरी के पौधों की जड़ों को कार्बोसल्फान 25

ई.सी.(मार्सल) 100पी.पी.एम. (2.5 मि.ली. प्रति 10 लिटर पानी) के घोल में 20–25 मिनट डूबोकर रखें व बाद में पालीघर/खेत में रोप दें, इससे फसल में सूत्रकृमि हानि नहीं पहुंचायेगा।

पिछली फसल के जड़–ठूंठ व अवशेषों को निकालना

निकाली हुई सडी–गली जड़ों को पॉलीहाउस से दूर ढेरी बना कर जला देना उचित होता है। या फिर उन्हें गहरे गढढ़े में दबाया जा सकता है। ऐसा करने से सूत्रकृमियों की लगभग 80–90 प्रतिशत संख्या कम की जा सकती है।

गर्मी का सूर्यतपीकरणः–

पॉलीहाउस को अच्छी प्रकार से 2–3 सप्ताह के लिऐ बंद कर देना चाहिये। 25 माईक्रान की पौलिथीन चादर से मिट्टी को ढकने से कृमियों की संख्या कम की जा सकती है। सूत्रकृमि को नियंत्रित कर दूसरे जीवों को भी नियंत्रित कर पाना संभव हो सकता है।

फसल–चक्र :–

जिस स्थान पर सब्जी वर्गीय फसलें उगाई जाने का इतिहास हो उन पर नए पॉलीहाउस बनाने से बचना चाहिये। इसके अतिरिक्त टमाटर की कुछ प्रजातियां जिनमें मुख्यतः पूसा चैरी–1 सम्मिलित है वे सूत्रकृमियों के प्रति मध्यम स्तर की प्रतिरोधकता दर्शाती है अतः उनको भी फसल–चक्र में सम्मिलित किया जा सकता है।

ट्रेप फसलः–

सूत्रकृमि आकर्षित करने वाली फसल जैसे–भिण्डी को एक महीने के लिये पॉलीघर में उगायें व जड़ सहित उखाड़ कर नष्ट कर दें। सनई व सरसों के पौधों को टुकड़ों में काटकर फसल बुआई से 10–15 दिन पहले जुताई करके मिट्टी में दबा दें।

जैविक खाद का प्रयोग :–

जैविक खाद जैसे ट्राइकोडरमा (2X1010) व सुडोमोनास (2X1012) 5–10 कि.ग्रा. एक टन गोबर की सड़ी खाद में अच्छी तरह मिलाकर रख दें व 15–20 दिनों के बाद सूत्रकृमि ग्रसित क्षेत्र में 200–300 ग्राम प्रति वर्गमीटर की दर से मिट्टी में मिलायें।

नीम की निबोली, पत्तियों का पाउडर बनाकर फसल बुआई से पहले 500 किलो प्रति हेक्टेयर की दर से डाल सकते हैं।

रासायनों का प्रयोगः–

पॉलीघर में सूत्रकृमि की संख्या को नियन्त्रित करने में धूमक रासायन मिथाम सोडियम (वेपाम) (300 L/ha) या डैजोमेट बहुत ही प्रभावी है। कार्बोफ्यूरान 33–66 किलो प्रति है॰ बुआई के समय पर मिट्टी में मिलायें । इनके अलावा वेलम प्राईम 250–300 मि.ली. प्रति एकड. रोपाई के पहले डाल सकते हैं । अगर सूत्रकृमि की संख्या अधिक है तो वेलम प्राईम का प्रयोग रुपाई के 10 दिनों के बाद भी हो सकता हैं तथा सूत्रकृमि की संख्या को नियन्त्रित किया जा सकता हैं। अगर फफूंद की संख्या अधिक है तो फफूंदनाशी का प्रयोग रोपाई के पहले अवश्य करें।

उपरोक्त विधियों में से 2–3 विधियॉ अपनाकर सूत्रकृमि की संख्या को कम किया जा सकता है, जो आर्थिक व पर्यावरण की दृष्टि से अच्छा रहेगा व फसल उत्पादन में वृद्धि भी होगी। इस प्रकार रोग को समेकित प्रबंधन प्रदान कर सकते हैं जिससे लाभ व्यय के अनुपात में भी सुधार होगा।

मेन्थॉल मिन्ट की उन्नत खेती में टपक सिंचाई का महत्व

[1]सोनवीर सिंह, [1]दिपेन्द्र कुमार, [2]प्रियंका सूर्यवंशी
[1]सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान
अनुसंधान केन्द्र, पन्तनगर
[2]सी.एस.आई.आर.–केन्द्रीय औषधीय एवं सगंध पौधा संस्थान लखनऊ

मेन्थॉल मिन्ट जिसका वानस्पतिक नाम मेन्था आर्वेन्सिस (इटालिक शब्द) है, जिसे हम देशी भाषा में जापानी पुदीना के नाम से जानते है, जो कि लैविएटी कुल का पौधा है। भारत में सबसे पहले इसे जम्मू–कश्मीर प्रदेश में लगभग 1952 में लगाया गया था, इसके बाद में यह हमारे यहाँ की जलवायु में बहुत अच्छी तरह से घुलमिल गया। अब हमारे देश के अनेक राज्यों, उत्तर प्रदेश, पंजाब, हरियाणा, बिहार आदि का श्रेष्ठ आर्थिक महत्व का पौधा हो गया है, क्योंकि इससे प्राप्त होने वाले संगधीय तेल में लगभग 65–90 (प्रतिशत) की मात्रा में मेन्थॉल पाया जाता है, जिसका प्रयोग अनेक प्रकार के औषधि एवं सुगंधकारक उत्पादों और इत्र आदि उद्योगों में किया जाता है।

अन्तराष्ट्रीय स्तर पर देखा जायं तो भारत विश्व में सबसे बड़ा मेन्था उत्पादन करने वाला देश है एवं चीन दूसरे स्थान पर है जिसके कारण हमारा देश सबसे ज्यादा मेन्था ऑयल निर्यात करने वाला देश भी है भारत मे लगभग 2.5–3.0 लाख हेक्टेअर क्षेत्रफल मे इसकी खेती की जाती है जिससे लगभग 2.5–3.0 हजार लाख लीटर मेन्था तेल का उत्पादन होता है। परन्तु आजकल कृषि से हो रहे अन्धाँ–धुन्ध भू–जल उपयोग के कारण गिरता हुआ भू–जल स्तर एक चिन्ता का विषय बनता जा रहा है, यदि हम इसी प्रकार भ–ूजल का दोहन करते रहेंगे तो भविष्य में भूजल की समस्या हमारे लिए एक विकराल समस्या बन जायेंगी और बिना जल के मेन्थॉल मिन्ट या अन्य फसलों की कल्पना भी नहीं की जा सकती यदि हम मेन्था की खेती टपक सिंचाई के साथ करते हैं तो हम परम्परागत (बाढ़ सिंचाई) सिंचाई की तुलना में 30–50 प्रतिशत जल की बचत के साथ अधिक उत्पादन भी प्राप्त कर सकते है।

टपक सिंचाई (ड्रिप इरीगेशन) ऐसी विधि है जिससे पानी भूमि को नहीं बल्कि फसल को दिया जाता है, जिससे भूमि में पानी की मात्रा, क्षेत्र क्षमता स्थिर रहती है एवं जिसके कारण फसल की वृद्धि एवं विकास तेजी से होता है। इस सिंचाई का मुख्य उद्देश्य जल उपयोग क्षमता में वृद्धि एवं फसल को एक समान मात्रा में जल प्रदान करना होता है एवं उपज में वृद्धि हेतु फसल के जड़ वाले क्षेत्र में नमी बनाये रखता है। इस विधि में उपयोग होने वाली सामग्री जैसे पम्प, फर्टीगेशन टैंक, नोजल पाइप आदि थोड़े महंगे अवश्य होते हैं लेकिन एक बार लगवाने के बाद यदि हम इसकी उचित देखभाल और सावधानी के साथ उपयोग करेंगें तो लम्बे समय तक उपयोग कर सकते है। मुख्यतः इस विधि में स्वच्छ जल का प्रयोग होना चाहिए क्योकि जल में कचरा व मिट्टी के कण होने के कारण वह नोजल में फंस जाते हैं इसके लिए पाइप में जाली लगी होती जो जल छानने का कार्य करती है, जिनके समय समय पर साफ करने की आवश्यकता होती है।

मेन्थॉल मिन्ट की उत्पादन तकनीक

जलवायु

मेन्थॉल मिन्ट फसल के लिए समशीतोष्ण जलवायु उपयुक्त रहती है। लेकिन उष्ण और उपोष्ण जलवायु में भी इसकी खेती कर सकते है। प्रायः देखा गया है कि ऐसे क्षेत्र जहाँ पर दिन का तापमान 30 डिग्री सेन्टीग्रेड व रात का तापमान 18 डिग्री सेन्टीग्रेड रहता है, वहाँ पर इस फसल का उत्पादन अच्छा रहता है।

भूमि

मेन्थॉल मिन्ट की उन्नत खेती के लिए उचित जल निकास वाली बलुई दोमट मिट्टी मृदा अधिक उपयुक्त मानी जाती है, जिसका पी0एच0 6.0 से 7.5 हो क्योकि यह फसल जल भराव सहन नहीं कर सकती है। जल भराव की सिथित में फसल सड़ने लगती है, जिसका प्रभाव तेल उत्पादन पर पड़ता है। परम्परागत सिंचाई विधि में सिंचाई

नालियों से जिस प्रकार भूमि खराब होती है उसे टपक सिंचाई माध्यम से बचा सकते है।

सीमैप द्वारा विकसित प्रजातियाँ जो मुख्यतः किसान उगाते है, जो निम्न है–

1. सिम–उन्नति
2. सिम–क्रान्ति
3. सिम– सरयू
4. सिम–कोसी

भूमि की तैयारी

मेन्थॉल मिन्ट की खेती के लिए खेत की 2 या 3 गहरी जुताई कर देनी चाहिए जिससे मिट्टी भुरभुरी व ढीली हो जायें आवश्यकता हो तो एक या दो बार रोटावेटर से खेत को रोपण के लिए तैयार कर लेना चाहिए।

बुआई की विधि

किसान मुख्य रूप से निम्न विधि अपनाते है।

सीधी बुआई विधि

एक हेक्टेयर खेत मे लगभग सीधी बुआई के लिए 200 किग्रा में 250 किग्रा जड़ की आवश्यकता होती है, तैयार खेत में 50 सेमी0 की दूरी पर कूढ़े बनाकर उसमें जड़ को बो देते हैं बुआई के तुरन्त बाद सिचांई कर देते हैं, लगभग 10–15 दिन के अन्तराल बाद उसमे अंकुरण होने लगता है।

नर्सरी विधि

एक हेक्टेयर मेन्था की पौध तैयार करने के लिए लगभग 90–100 किग्रा मेन्था की जड़ को 5–6 सेमी के टूकडों में काट लेते हैं जिसमें दो या तीन गाठें हो, उसके उपरान्त जड़ के कटे हुए टूकडों को किसी भी फंफूदीनाशक (रिडोमिल, बाविस्टीन इत्यादि) से उपचारित करके नर्सरी के लिए लगभग 120–150 मी0 क्षेत्रफल तैयार कर लेते है जिसमें उचित जल निकास की व्यवस्था हो, तैयार नर्सरी वाले क्षेत्र में उपचारित जड़ (सकर) के टुकड़ों के जनवरी के अन्तिम सप्ताह या फरवरी में प्रथम सप्ताह में बिखेर देते हैं। और हमें इस बात का विषेष ध्यान रखते हैं कि जड़ के टुकडे मिट्टी के सम्पर्क मे आ जायें इसके उनरान्त लगभग 30–45 दिन मे नर्सरी पौध रोपण के लिए तैयार हो जाती है।

पौध रोपण

नर्सरी मे तैयार पौधे को मार्च माह में तैयार खेत में 45X15 से0मी0 की दूरी पर पौधे को रोपित कर देते है।

सिंचाई

मेन्थॉल मिन्ट की फसल सूखा सहन नहीं कर सकती है प्रायः गर्मियों मे हर पाँचवे दिन सिंचाई की आवश्यकता पडती है इसमें 8–10 सिंचाई की आवश्यकता पड़ती है परन्तु हम टपक सिंचाई से 30–50 प्रतिशत जल की बचत कर सकते है। जिसका उपयोग किसी अन्य फसल में कर सकते है।

खाद उर्वरक

मेन्थॉल मिन्ट की अच्छी खेती के लिए 150 किग्रा नत्रजन, 60 किग्रा फॉस्फोरस व 40 किग्रा पोटाश प्रति है की आवश्यकता होती है जिसमें 1/3 नत्रजन,एवं फॉस्फोरस, व पोटाश की पूरी मात्रा बुआई के समय खेत में डाल देते हैं। यदि हम मेन्थॉल मिन्ट में टपक सिंचाई का उपयोग करते हैं तो टपक लाइन विधि से रासायनिक खाद की आवश्यकता में 30–40 प्रतिशत कमी हो जाती है इस विधि को हम फर्टिगेशन कहते हैं। फर्टिगेशन टैक के माध्यम से उर्वरक सीधे फसल की जड़ों को प्राप्त होते हैं एवं उर्वरक छिड़काव पर होने वाले मानव श्रम खर्च की आवश्यकता नहीं होती है।

खरपतवार

मेन्थॉल मिन्ट में मुख्य दो निराई–गुड़ाई की आवश्यकता होती है, फसल में खरपतवार होने के कारण पैदावार में कमी व तेल की गुणवत्ता पर प्रभाव पड़ता है। यदि हम टपक सिंचाई का प्रयोग करते हैं, तो फसल में खरपतवार न के बराबर उगेगें क्योंकि रासायनिक उर्वरक सीधे फसल की जड़ों को मिलता है जिसके कारण आस–पास की मृदा सूखी रहने से खरपतवार पनप नहीं पाते हैं, जिसके कारण सभी पोषक तत्व फसल को ही मिलते हैं। इसके अलावा परम्परागत सिंचाई विधि में सिंचाई नालियों के माध्यम से अनेक प्रकार के खरपतवार हमारी फसल में जल बहाव के

साथ आ जाते हैं जो इस विधि से नहीं आ सकते हैं। इस प्रकार खरपतवार नियन्त्रण होने वाले खर्चों जैसे खरपतवार नाशी एवं मानव श्रम पर होने वाले खर्चे कम कर सकते हैं।

कीट एवं रोगों कीरोकथाम

मेन्थॉल मिन्ट में मुख्यतः खुआ, उकठा रोग का प्रकोप होता है जो कि मुख्य रूप से फफूंद से उत्पन्न होते है जिसके नियन्त्रण के लिए फफूंदीनाशक (रिडोमिल, बाविस्टीन इत्यादि) का प्रयोग किया जाता है। पत्तियां कुतरने वाले केटरपिलर व पत्तियों को ऐंठने वाले कीटों का भी आक्रमण होता है, जिसके लिए किसी भी कीटनाशक (मोनोक्रोटोफॉस, डाइक्लोरोवॉश इत्यादि) का उपयोग करना चाहिए यदि हम टपक सिंचाई के साथ खेती करते हैं तो पौधे का स्वस्थ्य व अच्छा विकास होता है जिसके कारण कीट और रोगों का फसल पर आक्रमण काफी कम हो जाता है एवं कीटनाशकों व फफूंदी नाशकों पर होने वाले खर्चों मे कमी होती है।

कटाई व पैदावार

मेन्थॉल मिन्ट फसल की प्रथम कटाई बुवाई के 100 से 110 दिन बाद जमीन से 10–15 सेन्टीमीटर ऊपर से की जाती है एवं दूसरी कटाई पहली कटाई के 60–80 दिन के बाद करते हैं जिसमें एक हेक्टेयर में पहली कटाई से 100–125 किग्रा तेल व दूसरी कटाई से 80–100 किग्रा तेल प्राप्त होता है। यदि हम दोनों कटाई से प्राप्त होने वाले तेल का आकलन करें तो एक हेक्टेयर से दोनों कटाई में 200 से 250 किग्रा तेल प्राप्त होता है। मेन्था कटाई से पूर्व लगभग 8–10 दिन पहले सिंचाई बन्द कर देनी चाहिए। यदि हम परम्परागत सिंचाई विधि से हट कर टपक सिंचाई विधि से खेती करते है तो फसलों की वृद्धि में विकास के साथ उत्पादन में वृद्धि होगी क्योंकि पौधों को प्रतिदिन आवश्यक मात्रा में जल मिलेगा जिससे पौधों पर तनाव नहीं पड़ेगा।

आसवन

मेन्थॉल मिन्ट की ताजा कटी शाक या अर्द्ध सूखी शाक को आसवन टैंक में भर देते है लगभग 3–4 घंटे में वाष्प आसवन इकाई पूर्ण तेल प्राप्त हो जाता है। लगभग वाष्प आसवन इकाई के रिसीवर में आसवन प्रारम्भ होने के आधे घंटे बाद तेल आना प्रारम्भ हो जाता है।

एक हेक्टेयर मेन्थॉल मिन्ट की फसल उत्पादन होने वाले आय–व्यय का अनुमानित विवरण–

क्र0सं0	परम्परागत सिंचाई विधि से	व्यय (₹)	आय(₹)	टपक सिंचाई विधि से व्यय (₹)	आय (₹)
1	प्रथम वर्ष (दो कटाई)	75000	250,000	100,000	250,000
2	द्वितीय वर्ष (दो कटाई)	75000	250,000	50,000	250,000
3	तृतीय वर्ष (दो कटाई)	75000	250,000	50,000	250,000
	कुल	225,000	750000	200,000	7,50,000
	सकल आय		525000		550000

एक हेक्टेयर मेन्था के फसल के लिए लगभग एक लाख रूपये का टपक सिंचाई के संयत्र लगाने में व्यय होता है परन्तु भारत सरकार द्वारा संचालित प्रधान मंत्री सिंचाई योजना के अन्तर्गत विभिन्न राज्य सरकारों द्वारा 80–90 प्रतिशत तक अनुदान दिया जाता है।

महिलाएं आत्मनिर्भर कैसे हों?

सूर्या राठौर* एवं ममता मीणा**
*राष्ट्रीय कृषि प्रबंध अकादमी, हैदराबाद (तेलंगाना)
**भा.कृ.अनु.प.–केन्द्रिय शुष्क क्षेत्र अनुसन्धान संस्थान, जोधपुर (राजस्थान)

आत्मनिर्भरता सफलता का सच्चा और सरल पथ है। दूसरों के ऊपर निर्भर होने से अपना बल कम होता है और इच्छाओं की पूर्ति में बाधा उत्पन्न होती है। अपनी प्रत्येक बाह्म परिस्थिति की जिम्मेदारी दूसरों पर मत डालिये, वरना अपने ऊपर लेने का प्रयास करना चाहिए। संसार को दर्पण के सामान समझिये जिसमें अपनी ही मूरत दिखायी देती है। दुसरे लोगों में जो अच्छाईयाँ–बुराईयाँ दिखाई पड़ती है, सामने जो प्रिय–अप्रिय परिस्थितियाँ आती हैं; इसका कारण कोई और नही; वरन हम स्वयं हैं तथा उनमें परिवर्तन करने की शक्ति भी किसी और में नही, अपितु स्वयं हममें है। मनोविज्ञान के अनुसार मनुष्य में यह एक बड़ी भारी त्रुटि हैं कि हम अपनी भूल या न्यूनता को स्वीकार नहीं करते। हम अपने ऊपर उत्तरदायित्व लेने के लिए तैयार नहीं होते। हम अपने दोषों को दूसरों के ऊपर थोपने का प्रयास करके स्वयं को निर्दोष बनाना चाहतें हैं।

अच्छाईयों के साथ बुराईयों से बच निकलना बुद्धिमत्ता का काम है। ऐसी बुद्धिमत्ता तब आती है जब आत्मनिर्भरता के दृष्टिकोण को अपना लिया जाए। हम किसी समस्या को सुलझाने के लिए दूसरों की सहायता ले सकते है, पर उनके ऊपर अवलम्बित नहीं होना चाहिए। हम अपनी कठनाईयों को सुलझाने का प्रयत्न करें। जब तक हम दूसरों पर आश्रित रहतें है, यह समझतें है कि हमारे कष्टों को कोई अन्य दूर करेंगा, तब तक हम बहुत बड़े भ्रम में है। समस्त समस्याओं को सुलझाने की कुंजी हमारे अन्दर है। दुसरे लोगों से जिस बात कि आशा करते हैं, उनकी योग्यता हमें अपने भीतर पैदा करनी चाहिए तब अनायास ही इच्छाएँ पूरी होने लगेंगी। संसार में सफलता प्राप्त करने की आकांक्षा के साथ–साथ अपनी योग्यता में वृद्धि करना भी हमें प्रारम्भ करना चाहिए। अपने भाग्य को जैसा चाहे वैसा लिखना हमारे अपने हाथ की बात है। यदि हम आत्मनिर्भर हो जाएं, जैसा होना चाहतें हैं उनके अनुरूप हो जाएं; तो विधाता को भी विवश हो कर हमारी इच्छानुसार भाग्य लिखना होगा।

आत्मनिर्भर व्यक्ति कभी भी बड़ी–बड़ी कल्पनाएँ नही बनाता, वह केवल उतना ही सोचता है जितना उसे करना होता है। जो आत्मनिर्भर है, आत्मविश्वासी है, आत्मविश्वासी तथा आत्मनिर्णयक है, जिसके पास अपनी बुद्धि और अपना विवेक है, उनका जीवन सफल एवं संतुष्ट होता है। आत्मनिर्भर को किसी काम के लिए किसी दूसरे की ओर देखना नहीं पड़ता। आत्मनिर्भरता एंव आत्मविश्वास ऐसे दिव्य गुण हैं जिनको विकसित कर लेने पर संसार का कोई भी कार्य कठिन नहीं रह जाता। यदि हम जीवन में सफलता, उन्नति, सम्पन्नता एवं वृद्धि चाहतें हैं, तो हमे आत्मनिर्भर बनना होगा। अपना जीवन–पथ हमें स्वयं अपने हाथों से ही प्रशस्त करना होगा। निसंदेह यदि हम निष्कलंक, निर्भीक ओर निर्द्वन्द जीवन के बीच सुख–समृद्धि का भोग करना चाहतें हैं तो हमें आत्मनिर्भर बनना होगा।

मनुष्य की शोभा आश्रित बनने में नहीं, आश्रय देने में है। जब संसार में अन्य लोग (यानि कि पुरूष) आगे बढ़ सकतें है, उन्नति कर सकतें है, तब क्या कारण है कि पुरूषो के सामान हाथ–पैर तथा बुद्धि विवेक पाने पर महिलाएँ सफल एवं समृद्ध क्यों नहीं हो सकतीं? समझदारी, जिम्मेदारी, बहादुरी – ये विभूतियाँ ऐसी हैं कि जिनका सुनियोजित सदुपयोग कर प्रत्येक व्यक्ति प्रगति की दिशा में आगे बढ़ सकता है। वस्तुतः ये आत्म–उन्नति के चरण हैं। इन्हे अपनाने के लिए हमें जागरूकता, तत्परता और तन्मयतापूर्वक निरंतर प्रयत्नशील रह कर आत्मनिर्भर बनने का प्रयास करना चाहिए।

मजबूरी या परिस्थितिवश अगर कोई इंसान किसी और पर निर्भर हो तो न तो निर्भर प्राणी को कोई समस्या माना जाना चाहिए ओर न ही जिस पर निर्भर हैं उसे कुछ और समझना चाहिए, बल्कि खुशी और कर्तव्यबोध के दायित्व का निर्वाह ही इंसान का असली गुण है। यदि निर्भरता आदतवश हो या अपनी परंपरा संस्कृति का हिस्सा माना जायें तो उसे अवश्य ही दुरूस्त किया जाना चाहिए। जैसे कि हमारे समाज में कुछ कार्य हैं जिन के लिए अक्सर महिलाएँ अपने पिता, पति अथवा पुत्र पर निर्भर रहती हैं, जैसे वाहन चलना, परिवार का भरण पोषण करना व अन्य बाहर के सभी कार्य परन्तु अब समय बदल चुका है और महिलाओं को आत्मनिर्भर होना पड़ेगा। एक छात्रा के रूप में जब लड़की स्कूल–कॉलेज या टयूशन पर जाती है तो पिता या भाई उसे छोड़ने व लेने जाते हैं परन्तु समय की व ईधन की बर्बादी होती है अतः बेहतर यह होगा की लड़की खुद साइकिल या स्कूटर चलाना सीखे। इससे उसे आत्मबल मिलेगा व वो आत्मनिर्भर बनेगी।

अब यह प्रश्न उठता है कि आत्मनिर्भरता के क्या–क्या आयाम हैं? आत्मनिर्भरता के विभिन्न आयाम हैं जैसे आर्थिक, सामाजिक, तकनिकी, शैक्षिक इत्यादि। सर्वप्रथम हम आर्थिक रूप से आत्मनिर्भता का उल्लेख करते हैं। यदि महिलाएँ पुरूषों से कंधे से कन्धा मिला कर देश की अर्थव्यवस्था में योगदान देंगी तो हमारे देश कि आर्थिक स्थिति सुधरेगी। महिला आबादी का वह हिस्सा है जो संभवतः 50% है, यदि वो आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर नहीं होगी तो समाज कैसे विकास करेंगा? विश्वभर में एक दशमलव तीन अरब लोग पूर्ण गरीबी में रहतें हैं जन्म से 70 प्रतिशत महिलाएं हैं। अतः यह आवश्यक है कि आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होना महिलाओं के लिए अति आवश्यक है। हमारी बहनों के मन में यह प्रश्न उठ रहे होंगे कि यदि हम पढ़ी–लिखी हैं तो नौकरी कर लेगी परन्तु यदि अनपढ़ या कम पढ़ी लिखी हैं, जैसा कि ग्रामीण परिवार में अक्सर देखने को मिलता है तब क्या करेंगी? इसके लिए आप किसी कला में सक्षम हो समती हैं जैसे सिलाई, बुनाई, सॉफ्ट टॉयज, मसाले, पापड़–बड़ियाँ बनाना, आचार एवं चटनी इत्यादि। इन सबके के लिए स्वयं सहायता समूह एक सक्षम माध्यम है। जब महिलाएँ आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होगी तो घर व समाज में उनकी महत्ता बढ़ेगी।

आत्मनिर्भरता का दूसरा आयाम है सामाजिक, जब एक महिला आर्थिक रूप से सक्षम होगी तो समाज में उसका अपने आप ही स्थान ऊँचा हो जाता है। आर्थिक आत्मनिर्भरता एक ऐसी धूरी है जिसके इर्द गिर्द बाकी सभी प्रकार के आयाम घुमते हैं। घर से शुरू करें तो आर्थिक रूप से स्वावलम्बी महिला के पति, सास–ससुर इत्यादि घर में उसे महत्वपूर्ण निर्णय लेने में भी शामिल करते हैं। इससे महिला की घर व समाज में आत्मनिर्भरता बढ़ती है। यही नहीं समाज व परिवार में उसको ज्यादा सम्मान भी प्राप्त होता है। महिलाओं को आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होने के लिए यह भी ध्यान रखना है कि यदि उनके पति, भाई इत्यादि के नाम जमीन, मकान है तो उनके नाम भी कुछ हो चाहे वह अपनी अर्जित आय के द्वारा हो अथवा विरासत में प्राप्त हुई हो। इससे महिला का सामाजिक स्थान ऊँचा होता है, व उनमें आत्मसम्मान का विकास होता है। उदहारण स्वरूप ऐसा अक्सर देखा गया है कि यदि किसी बुढ़ियाँ के पास आय का कोई स्त्रोत हो जैसे मकान किराया, पेंशन इत्यादि तो बेटे बहु उनकी अधिक सेवा करते हैं व घर के हर निर्णय में उसे शामिल करते हैं।

अब हम बात करते हैं तकनिकी आत्मनिर्भरता की, जिसके उदहारण हैं तकनिकी ज्ञान जैसे घर में छोटे मोटे काम; गैस का सिलिंडर बदलने से लेकर कार, ट्रैक्टर चलाना। चूँकि हमारे समाज में तकनीकी क्षेत्र में हमेशा पुरूष आगे रहे हैं परन्तु अब महिलाओं को आत्मनिर्भर होना होगा। आप साइकिल, स्कूटर, ट्रैक्टर इत्यादि चलाना सीखें कितनी खुशी प्राप्त होगी, लगेगा की आप कितनी सक्षम हैं।

बहनों इन सब आत्मनिर्भरताओं का मूलमंत्र है सक्षम आत्मनिर्भरता। बहनों को शिक्षित होना पडेगा। यदि आप अनपढ़ हैं तो प्रौढ़ शिक्षा केन्द्र में पढ़े और अपनी पुत्रियों को जरूर पढ़ाएँ। शिक्षा ही आत्मनिर्भरता की कुंजी है।

शीत कालीन ऋतु में मधुमक्खी पालन प्रबंधन

सुभाष चन्द्र, सचिन सु. सुरोशे एवं संजीव रंजन सिन्हा
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान नई दिल्ली – 110012

मधुमक्खी पालन एक कृषि आधारित उद्योग है जिसमें मधुमक्खियाँ फूलों से लिए रस को शहद में परिवर्तित कर देती हैं और उन्हें छत्तों में भर देती हैं। शहद और इसके उत्पादों की बढ़ती आवश्यकता को देखते हुए यह एक लाभदायक और आकर्षक व्यवसाय बनता जा रहा है। मधुमक्खी पालन कृषि उत्पादन बढ़ाने की क्षमता भी रखता है। मधुमक्खी पालन किसानों की आमदनी को बढ़ाने का एक अच्छा विकल्प है क्योंकि यह खेती के साथ किया जा सकता है और इसमे कोई अतिरिक्त भूमि की आवश्यकता भी नहीं होती है और इनका पालन उन स्थानों पर भी किया जा सकता है जहां खेती करना सुलभ नहीं होता। नेशनल बी बोर्ड के अनुसार 2017–18 में भारत में शहद का उत्पादन लगभग 1.05 लाख मीट्रिक टन हुआ जिसका लगभग आधा हिस्सा निर्यात हुआ और यह इस तरह शहद विदेशी मुद्रा अर्जित करने का एक महत्वपूर्ण साधन बन' गया है।

मधुमक्खी पालन का प्रारम्भ पाँच बक्सों से भी किया जा सकता है। भारत में मुख्य रूप से पांच प्रकार की मधुमक्खियां पाई जाती हैं – यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी (*एपिस मेलीफेरा*), भारतीय मधुमक्खी (*एपिस सेरेना इंडिका*), पहाडी या जंगली मधुमक्खी (एपिस डोरसेटा), छोटी मधुमक्खी (*एपिस फ्लोरिया*) तथा स्टिंगलेस मधुमक्खी या एम्बर बी (*मेलीपोना एवं ट्रीगोना*) पायी जाती हैं। मधुमक्खी पालन के लिए इटेलियन मधुमक्खी, भारतीय मधुमक्खी (*एपिस सेरेना*) एवं डंक रहित (स्टिंग लेस) ही मुख्य हैं जंगली मधुमक्खी को अभी तक पाला नहीं जा सका है क्योंकि यह बहुत गुस्सैल प्रकृति की होती है और इसका डंक भी काफी जहरीला होता है। इनमें इटेलियन मधुमक्खी को काफी आसानी से पाल सकते हैं क्योंकि वह बहुत शांत स्वभाव की होती है भारतीय मधुमक्खी इटेलियन मधुमक्खी से ज्यादा अशांत प्रकृति की होती है मधुमक्खी पालन से कई प्रकार के मधुमक्खी उत्पादों जैसे मधु, रॉयलजेली, विष, मोम, प्रोपोलिस इत्यादि के अलावा अप्रत्यक्ष लाभों के साथ–साथ रोजगार का भी सृजन होता है।

मधुमक्खी पालन योग्य प्रजातियाँ –

***एपिस मेलीफेरा* (यूरोपियन या इटेलियन मधुमक्खी):** यह भारतीय मधुमक्खी से आकार में बड़ी होती है इसके एक मौनगृह में दस छत्ते होते हैं। इनके छत्तों की लम्बाई 440 मि मी एवं चौड़ाई 228 मिमी होती है। इन मधुमक्खियों का छत्ता अंधेरे में होता है और ये समानान्तर छत्ते लगाती हैं। रानी अपेक्षाकृत बड़े आकार की होती है जिसका जीवन काल दो से तीन वर्ष होता है एवं 1500–2000 अंडे प्रतिदिन देती है। इसकी मादा श्रमिक अच्छे भोजन की तलाश में लगभग 2.5 किलोमीटर तक के क्षेत्र में भ्रमण कर पौधों से पुष्प रस एवं पराग एकत्र करती हैं। इस प्रजाति की उत्पादकता लगभग 25 किग्रा. शहद प्रति मौन गृह प्रतिवर्ष होती है यह मधुमक्खी बहुत शान्त स्वभाव की होती है जिसके कारण इस प्रजाति का पालन काफी आसान होता है एवं शहद उत्पाद हेतु यह मधुमक्खी पूरे विश्व में पाली जाती है।

***एपिस सेरेना इण्डिका* (भारतीय मधुमक्खी):** यह मधुमक्खी भारत वर्ष के सभी भागों में पाई जाती है। यह मध्यम आकार की होती है तथा यह बंद स्थानों एवं अंधेरे वाली जगहों जैसे पेड़ों के खोखलों एवं अन्य समान संरचना वाले स्थानों पर एक साथ 7 से 8 छत्ते समानान्तर दूरी पर लगाती हैं। इनकी रानी का जीवनकाल भी 2 से 3 वर्ष होता है जो प्रतिदिन 700 से 1600 अण्डे देती है श्रमिक मधुमक्खी 800 मीटर से लेकर 1 किलोमीटर परिधि तक वनस्पतियाँ पर भ्रमण कर पुष्प रस एवं पराग एकत्रित करती है। इनकी मधु उत्पादन की क्षमता लगभग 10 से 15 किग्रा. प्रतिवर्ष

प्रति मौनगृह होती है।

स्टिंग लेस मधुमक्खी (मेलीपोना व ट्रीगोना): यह मधुमक्खी डंकहीन होती है। इसके छत्ते छोटे गोलाकार एवं काले रंग के होते हैं। इससे प्राप्त शहद के औषधीय गुणवत्ता ज्यादा होती है। ये फसलों में पर परागण के लिए सर्वाधिक उपयोगी होती है। इनका पालन पेड़ या बांस की खोखली संरचनाओं में किया जा सकता है। स्टिंगलेस मधुमक्खी (ट्रीगोना प्रजाति) से प्रतिवर्ष 600 ग्राम प्रति मौनगृह शहद का उत्पादन होता है।

मधुमक्खी का जीवन चक्र

मधुमक्खी एक सामाजिक कीट है जो एक परिवार की तरह काम करती है। मधुमक्खी के छत्ते (कॉलोनी) में रानी, नर, मादा व श्रमिक होते हैं। पूरे परिवार में एक ही रानी मधुमक्खी होती है। मधुमक्खी में श्रम विभाजन लिंग एवं आयु के अनुसार होता है। एक मधुमक्खी के छते में 40,000–50,000 सदस्य होते है एवं एक मौन वंश में केवल एक रानी, नर और 20–200 शेष श्रमिक मधुमक्खियां होती हैं।

इनका जीवन चक्र तीन अवस्थाओ में पूरा होता है –

रानी मक्खी – रानी मक्खी आकार में सबसे बड़ी, सक्रिय एवं सुनहरे रंगवाली पूर्णतया विकसित मादा होती है। इसमें मोम ग्रंथिका विकास नहीं होता है। इसका जीवन काल 2–3 वर्ष का होता है।

श्रमिक मक्खी – यह अपूर्ण विकसित एवं बंध्य मादा होती है। एक छत्ते में इनकी संख्या 20,000–30,000 तक होती है एवं इनका जीवन काल 35–42 दिन का होता है। परिवार में सबसे बड़ा काम श्रमिक मक्खियों का होता है। इनके कार्यों का बटवारा उम्र के आधार पर होता है, जैसे 1–14 दिन तक सक्रिय रूप से छत्ते की सफाई करना, 14–20 दिन तक छत्ते के प्रवेश द्वार पर सुरक्षा कर्मी का कार्य करना एवं 20–35 दिन तक पुष्प रसध्मकरंद एवं परागकण का संग्रहण करना होता है।

नर मक्खी (ड्रोन) – सक्रिय नर मक्खी अनिषेचित अंडे से उत्पन्न होता है। इनका जीवन चक्र लगभग 60 दिन का होता है एवं इसका कार्य केवल निषेचन करना होता है।

मधुमक्खी पालन विधि एवं जीवन चक्र प्रबंधन

मधुमक्खी पालन शुरू करने के लिए सर्वाधिक उपयुक्त समय फरवरी–मार्च या अक्टूबर–नवम्बर का होता है। यह समय तापक्रम की दृष्टि से रानी मधु मक्खी द्वारा सर्वाधिक अंडा उत्सृजन के लिए उपयुक्त होता है। पारम्परिक मधुमक्खी पालन में प्राकृतिक रूप से मधुमक्खी द्वारा छत्ता बनाया जाता है। इस विधि से छत्तों को बिना नष्ट किये या बिना हटाए मधु निकालते हैं। आधुनिक मधुमक्खी पालन व्यावसायिक रूप से कहीं भी किया जा सकता है, जिसमें कृत्रिम तरीके के सांचो पर मधुमक्खी द्वारा छत्ता बनाया जाता है और उसमें मधु तैयार होता है। छत्तों को आसानी से हटाया जा सकता है और बार–बार प्रयोग में लाया जा सकता है।

मधुमक्खी पालकों को मधुमक्खी पालन से अधिक लाभ लेने हेतु मौनवंश की देखभाल एवं मौसम के अनुसार वैज्ञानिक प्रबंधन करना अति आवश्यक होता है । इसके लिये निम्न बिंदुओं का अनुपालन करना चाहिए। मधुमक्खी अपने भोजन के लिए पूर्णतया पुष्पीय पौधों पर आश्रित होती है। मधुमक्खी पालकों को तीन किलोमीटर परिधि के क्षेत्र में मौसमी फूलवाली वनस्पतियों जैसे सब्जियों, फलदार वृक्ष, शोभाकारी पौधे एवं वानिकी वृक्षों के रोपण एवं आच्छादन की जानकारी होना अति आवश्यक है। मधुवाटिका के लिये खुले धूप वाले स्थानों का चयन करना चाहिए। जहां पर स्वच्छ जल एवं प्रचुरता में फूल वाली फसलें उपलब्ध हो एवं बिजली के उपकरणों, सडक, यातायात से व्यवधान उत्पन्न न हो। मधुमक्खी पालन हेतु मधुमक्खियों की उपयुक्त प्रजाति (*ए. मेलीफेरा* एवं *ए. सेरेना*) का चयन करें। अच्छी गुणवत्तावाली एवं माइट व रोग रहित कॉलोनी का चयन करना चाहिए। किसी प्रमाणित संस्था से ही मधुमक्खी खरीदना चाहिए। मधुवाटिका में कॉलोनी को सुरक्षित जगह में रखना चाहिए।

मौन वंश का नियमित अंतराल पर निरीक्षण करते रहना चाहिए। इसके अंतर्गत मौनवंश के बक्सों में रानी मक्खी एवं अंडोत्सर्जन, छत्तों में मधुपराग का संचय, कीटों एवं रोगों के प्रकोप की जानकारी प्राप्त करना होता है।

पानी की व्यवस्था करना तथा अभाव काल में भोजन का प्रबंध करना भी जरूरी हो जाता है। मधुमक्खियों का प्रजनन के समय विशेष देखभाल एवं मौसमी प्रबंध करना चाहिए। इसी तरह पीड़कनाशी या बीमारियों से मधुमक्खियों की कॉलोनी का बचाव करना चाहिए।

अस्वस्थ मौनवंशों के प्रबंधन में संगरोध का पालन करें अर्थात स्वस्थ मौनवंशों को अस्वस्थ मौनवंशों से दूर रखें। अस्वस्थ मौनवंश से शहद नहीं निकालना चाहिए। रानी मधुमक्खियों को दो वर्ष के अंतराल पर बदले।

मधुमक्खी पालन के लिए आवश्यक सामग्री व उपकरण

मधुमक्खी पालन शुरू करने हेतु कम लागत एवं सस्ते उपकरणों की आवश्यकता होती है। मौनगृह (मधुबक्सा), मधुमक्खी पालन का अति महत्वपूर्ण उपकरण है । इसके अतिरिक्त मधुमक्खी पालन के आवश्यक उपकरण इस प्रकार हैं– केन्द्रीय छत्ता, स्टैंडफ्रेम, फीडर, रानी मक्खी एक्सक्लूडर, मधु निष्कर्षक, धूमक, टूलकिट, स्टील कंटेनर, कुकिंग यंत्र, छीलन छुरी एवं ट्रे, रानी मधुमक्खी पालक किट, काम्ब फाउंडेसन शीट, नकाब, दस्ताना आदि।

मौन वंश का विभाजन

अच्छे मौसम में मधुमक्खियों की संख्या बढ़ती है अतः मधुमक्खी परिवारों का विभाजन करना चाहिए। ऐसा नहीं करने से मधुमक्खियां भाग सकती हैं। मौन वंश से उसी प्रकार का दूसरा मौन वंश बनाने काम इस प्रकार करें जिससे भोजन संचय एवं शिशु मौन दो बराबर–बराबर गृहों में विभाजित हो जाएँ। विभाजन के लिए मूल परिवार के पास खाली बक्सा रखें और मूल मधुमक्खी परिवार से 50% ब्रूड, शहद एवं पराग वाले फ्रेम तथा रानी वाला फ्रेम भी नये बक्से में रखें। दोनों बक्सों को रोज एक एक फीट एक दूसरे से दूर करते जाएं इस प्रकार नया बक्सा तैयार हो जायेंगा।

शीत कालीन ऋतु में प्रबंधन

शीत कालीन ऋतु में विशेष रूप से अत्याधिक ठंढ पड़ती है जिसमें तापमान कभी कभी 10°C से भी नीचे चला जाता है, ऐसे में मौन वंशो को बचाना जरुरी हो जाता है।

सर्दियों में कॉलोनियों को तैयार करने के लिए निम्न सुरक्षा प्रदान की जानी चाहिएः

– छत्ते (हाइव) प्रवेश को कम करना

– छत्ते (हाइव) में सभी दरारें बंद करना

– कॉलोनी को सीधी सर्द हवाओं से बचाना

छत्तों का भंडारण और संरक्षणः छत्ते में समय समय पर फूमीगेन्ट करके वैक्स मॉथ के हमले से अतिरिक्त छत्तों को वसंत तक सुरक्षित रखें क्योंकि इन छोड़े गए छत्तों को फिर से कॉलोनियों की जरूरत होगी।

ऊपरी हिमालयी क्षेत्र में नवंबर से मार्च तक भयंकर सर्दी होती हैं जिसके कारण मधुमक्खियों की कॉलोनियाँ खत्म जाती हैं। सर्दियों में कालोनियों को नुकसान से बचा जा सकता है अगर मधुमक्खी पालन प्रबंधन में चार बुनियादी सिद्धांतों का ध्यान रखा जाएः

1. हर कॉलोनी में बेहतर आनुवंशिक स्टॉक की एक युवा उर्वर रानी और युवा श्रमिक मधुमक्खियां होनी चाहिए।
2. प्रत्येक कॉलोनी को कम प्रवेश और उचित पैकिंग के माध्यम से चरम जलवायु परिस्थितियों से ठीक से संरक्षित किया जाना चाहिए।
3. हर कॉलोनी में शहद और पराग का पर्याप्त भंडार होना चाहिए।
4. हर कॉलोनी को ''रोग मुक्त'' स्थिति में रखा जाना चाहिए।

शहद की मक्खियाँ गर्मी पैदा करने के लिए ऊर्जा के स्रोत के रूप में और ब्रूड क्षेत्र के पास 32–35°C के छत्ते के तापमान को बनाए रखने के लिए शहद का उपयोग करती हैं। सर्दियों के लिए, यदि छत्ते को इन्सुलेशन प्रदान किया जाता है, तो यह भंडार की खपत को कम करने और मधुमक्खियों की ऊर्जा को बचाने में मदद करेंगा। इन्सुलेशन का प्रकार जलवायु क्षेत्रों पर निर्भर करता है।

छत्ते की शीतकालीन पैकिंगः

- बड़ी संख्या में युवा मधुमक्खियों के साथ केवल अच्छी कालोनियों और पर्याप्त खाद्य भंडार पैक किए जाने चाहिए।

- पैकिंग के लिए कॉलोनियों पुआल, चूरा, लकड़ी की छीलन, बीन के डंठल या सूखे पत्ते, कटा हुआ चावल या गेहूं का भूसा इस्तेमाल किया जा सकता है। उन्हें चारों तरफ से पुआल या पटसन (टाट) की बोरियों से ढका जा सकता है।
- पैकिंग सामग्री सूखी होनी चाहिए क्योंकि नमी इसे खराब इन्सुलेटर बना देगी।
- पैकिंग आंतरिक और शीर्ष कवर के बीच ब्रूड कक्ष में दी जा सकती है। मौन गृहों में छिद्र नहीं होने चाहिए यदि हों तो उन्हें बंद कर देना चाहिए। इनके निचले पट्टों को बोरियों से अवश्य ढक देना चाहिए।

शीत ऋतु में मधुमक्खी के भोजन का मुख्य स्त्रोत

उत्तर भारत में प्रायः सर्दी नवंबर से मार्च के महीनो में पड़ती है जिनमें सरसों, तोरियाँ, राई, सहजन, धनिया, प्याज, राजमा, चना, मटर, अमरूद, कुसुम, बेर, सूरजमुखी, बरसीम, रिजका, नींबू, मेथी, अरहर, यूकैलिप्टस, शीशम तथा शीत ऋतुओं में खिलने वाले विभिन्न प्रकार के पुष्प आदि होते हैं जिनसे मधुमक्खी मुख्यतः पराग और पुष्पों का मधु (नेक्टर) एकत्र करती हैं।

मधुमक्खी फसलों के परागण में भी महत्वपूर्ण सहायता निभाती है। ये पर–परागित पुष्पों के पराग को एक पुष्प से दूसरे पुष्प तक ले जाती हैं जिससे उनकी निषेचन क्रिया पूरी होती है। इस तरह मधुमक्खियां फसलों में परागण क्रिया करके उनकी उपज, बीजोत्पादन, फसलोंत्पादन एवं गुणवत्ता बढ़ाने में भी महत्वपूर्ण योगदान देती हैं। एक सामान्य एपिस मेलिफेरा मधुमक्खी कॉलोनी एक वर्ष में 4 लाख उड़ानें भर सकती है और प्रत्येक उड़ान में कम से कम 100 फूलों का दौरा कर सकती है।

भोजन अभाव काल के दौरान, मधुमक्खी की कालोनियों ऐसी जगह स्थानान्तरित करना चाहिए जहाँ वानस्पतिक पुष्पीय स्त्रोत उपलब्ध हों। भोजन अभाव काल के समय मधुमक्खी हेतु भोजन स्त्रोत के रूप में कृत्रिम भोजन देना अति आवश्यक होता है। कृत्रिम भोजन बनाने के लिए उबले हुए पानी का प्रयोग करना चाहिए एवं एंटीबायोटिक्स का प्रयोग नहीं करना चाहिए। कृत्रिम भोजन के रूप में गर्मियों में चीनी के घोल की सांद्रता 25 प्रतिशत होती है परंतु शरद काल में यह सांद्रता 50 प्रतिशत रखनी चाहिए। सामान्यतया 800–1000 ग्राम सर्करा प्रति कॉलोनी प्रति 10 दिन के लिए पर्याप्त होती है। कृत्रिम भोजन प्रवंधन हेतु शक्कर के 50 प्रतिशत सांद्रता वाले घोल या सोयाबीन आटा, यीस्ट, दूध का पाऊडर, शर्करा, शहद (3:1:1:22:50) के मिश्रण का प्रयोग करें। मौनवंशों को भोजन अभाव के समय एक स्थान से दूसरे स्थान में अधिक शहद एवं वृद्धि के लिए स्थानांतरण करना चाहिए। प्रवजन से पहले शहद का निष्कर्षण अवश्य कर लें एवं मधुमक्खी का प्रवजन सदैव शाम के समय करें।

मधुमक्खियों के नाशीजीवों का प्रबंधन

मधुमक्खी में कई प्रकार के नाशीजीवों का प्रकोप होता है। इनके सफल प्रबंधन के लिए इन नाशीजीवों की पूर्ण जानकारी आवश्यक है। मधुमक्खी के महत्वपूर्ण रोगों के अंर्तगत फाउलब्रूड, चाकब्रूड, सैकब्रूड, नोसीमा आदि आते हैं माइट (वरोरा स्पी.) व कीटों में ततैया (वेस्पा औरेंटैलिस), बीटल (एथीना टुमिडा), चींटी (ओइकोफाइला एवं मोनोमोरियम), वैक्स मोथ (गैलेरिया मेलोनेला) आदि मुख्य हैं।

इनसे बचाव के लिए निम्नलिखित तरीके अपनाएं–

– मधुमक्खी के छत्ते को 15 से 20 मिनट तक धूप में रखें।

– मधुमक्खी के डिब्बे की साफ–सफाई करें। किनारों की सफाई के लिए बुन्सन बर्नर का प्रयोग करें। मधुमक्खी के खाली छत्तों को गंधक (सल्फर) के चूर्ण से 230 ग्राम प्रति घन मीटर से उपचारित करें या खाली छत्तों को निर्जमीकृत करने के लिए 80 प्रतिशत एसिटिक अम्ल के 150 मिली/छत्ता प्रयोग में लाएं।

– रोगों के प्रभावी प्रबंधन हेतु उपकरणों को 49 डिग्री से. ग्रेड पर 24 घंटे तक रखकर निर्जमीकृत करें अन्यथा सभी संक्रमित उपकरणों को 7 प्रतिशत फार्मेलिन एवं साबुन के घोल में 24 घण्टे तक रखने के बाद साफ पानी से धोकर सुखाने के बाद प्रयोग में लाएं।

– मधुमक्खी के डिब्बे को स्टैंड पर जमीन से 40 से 60 से.मी. की ऊंचाई पर रखें। स्टैंड के पाओं को जल से भरी हुई कटोरियों के ऊपर रखना चाहिए।

– दो एपियरी के मध्य कम से कम 3 किलोमीटर की दूरी रखें। कालोनियों की पंक्तियों के बीच की दूरी 10 फीट एवं कालोनियों के बीच की दूरी कम से कम 3 फीट रखें। संक्रमित कालोनी से छत्ते न बदलें न ही संक्रमित कालोनी वाले उपकरणों का प्रयोग नई कालोनी में करें।

– परभक्षी पक्षियों से मधुमक्खी के छत्तों को बचाने के लिए ड्रम की ध्वनि का प्रयोग करें।

– जहाँ तक सम्भव हो सके कालोनियों में जालीदार तल पटटो का प्रयोग करें इससे वरोआ माइट के प्रकोप में 25 प्रतिशत तक की कमी आती है दिसम्बर से अप्रैल तक कालोनियों में सुपर लगाना चाहिए।

– माइट प्रतिरोधी कालोनियों का प्रयोग करें। वरोआ माइट के रोकथाम का उपाय अभाव काल एवं बसन्त काल के समय अवश्य अपनाना चाहिए।

– माइट के नियंत्रण के लिए सल्फर (99.5 प्रतिशत) का प्रयोग 0.5 ग्राम/फ्रेम केवल फ्रेम के ऊपरी सतह पर सावधानी से करें जिससे यह मधुमक्खियों के सम्पर्क में न आये अन्यथा यह मधुमक्खियों के लिए विषाक्तता का कारण बन जायेंगा या मिथाइल सैलिसायलेट (99 प्रतिशत) का 3 मिली/मौन ग्रह रुई के फुहे के माध्यम से दें । इसके अलावा आक्जैलिक अम्ल के 32 ग्राम को शक्कर के शर्बत (1:1) में घोलें एवं इसके 20–30 मिली. का प्रयोग मधुमक्खी के प्रवेश द्वार को गीला करने के लिये करें।

– सैकब्रूड के नियंत्रण के लिये प्रभावित छत्तों पर धूमन (धुएँ) के रूप में 2 प्रतिशत थाइमोल घोल के 3 मिली. प्रति मौन ग्रह में प्रयोग करना चाहिये।

पीड़कनाशियों से मधुमक्खियों को बचाने के उपाय

– फसलों पर फूल आने के समय कीटनाशियों का छिड़काव नहीं करना चाहिए।

– यदि अत्यावश्यक हो तो कीटनाशकों का छिड़काव शाम के समय करें क्योंकि इस समय मधुमक्खियां प्राय पुष्पों पर भ्रमण नहीं करती हैं। ऐसी अवस्था में जैविक कीटनाशियों के प्रयोग से मधुमक्खियों को सुरक्षित रखा जा सकता हैस।

– फसलों में पीड़कनाशियों के छिड़काव के समय मधुमक्खियों के छत्तों के प्रवेश द्वारों को बंद कर देना चाहिए। यदि सम्भव हो तो छत्तों को अस्थाई रूप से स्थानान्तरित करें। यदि स्थानान्तरण सम्भव न हो तो शर्करा का घोल भोजन के रूप में उपलब्ध करवाना चाहिए।

– फसलों में पीड़क कीटों के प्रबंधन हेतु कम विषाक्त एवं अनुशंसित रसायनों/पीड़कनाशियों का सुरक्षित प्रयोग करें जो मधुमक्खियों के लिए कम हानिकारक हों।

– कीटनाशकों के धूलि संरूपणों (फार्मुलेशन) की अपेक्षा द्रवीय व दानेदार संरूपणों का प्रयोग मधुमक्खियों के लिए सुरक्षित होता है।

– मधुमक्खियों एवं अन्य परागणकर्ता कीटों पर कीटनाशकों का विषैला प्रभाव पड़ता है ।फसल संरक्षण के अंतर्गत एकीकृत कीट/रोग प्रबंधन में चयनित कीटनाशक मधुमक्खियों एवं परागण करने वाले कीटों के लिए सुरक्षित होने चाहिए। इस सन्दर्भ में ऐसे कीटनाशकों का चुनाव करें जो मधुमक्खियों एवं अन्य परागण करने वाले कीटों को कम हानि पहुंचाएं।

– मधुमक्खी पालन में वैज्ञानिक पद्धति अपनाने से कॉलोनियां स्वस्थ रहती हैं जिससे शहद, प्रोपोलिस, मोम व अन्य उत्पादों के अधिक उत्पादन से ज्यादा आय प्राप्त की जा सकती है। इसके साथ साथ फसलों की उपज व गुणवत्ता बढ़ाने में भी मदद मिलेगी।

फॉल आर्मीवॉर्म – एक अनिष्ट आगंतुक कीट व इसका प्रबंधन

तिम्मण्ण, संजीव रंजन सिन्हा, देबजानी डे एवं शशांक पी आर
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

फॉल आर्मीवॉर्म (*स्पोडोप्टेरा फ्रूगीपर्डा*) एक बहुफसलीयभक्षी कीट है जो मूल रूप से अमेरिका के उष्णकटिबंधीय और उपोष्ण कटिबंधीय क्षेत्र का निवासी है। भारत में इसकी प्रथम घुसपैठ मई 2018 मे दक्षिण भारत के कर्नाटक राज्य में दिखी। धीरे धीरे यह एक ही वर्ष में लगभग पूरे दक्षिण में ही नहीं अपितु उत्तर भारत में भी फैल गया। दिल्ली में इस कीट की प्रभाव पहली बार भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान के मक्का खेतों में जुलाई 2019 में दिखा और अगस्त में इससे होने वाली मक्के मे क्षति को 18–20% तक आंका गया। यह एक नया घुसपैठ कीट होने के कारण भारत मे इसके लिए कोई कीटनाशक पंजीकृत नहीं हुआ था। इससे होने वाली क्षति को कम करने के लिए भारत सरकार ने कीटनाशकों की तदर्थ स्वीकृति प्रदान की।

भारतीय उपमहाद्वीप का यह एक अनिष्ट आगन्तुक कीट है। इसके शलभ अत्यधिक तेज गति से उड़ते हैं और कभी कभी एक रात में 100 किलोमीटर तक और गर्मी के मौसम में यह एक वर्ष में 2000 किलोमीटर तक चले जाते हैं। यह कीट उत्तरी अमेरिका की कठोर सर्दियों का सामना करता है और पतझड़ में उष्णकटिबंधीय वास पर लौटता हैं, जिसे अमेरिकी लोग 'फॉल' कहते हैं, इसलिए इसका नाम 'फॉल आर्मीवॉर्म' है।

यह एक बहुफसलभक्षी नाशी कीट है जो लगभग 350 विभिन्न मेजबान पौधों को क्षति पहुंचाता है। भारत में इसने मुख्यतः मक्का, ज्वार, बाजरा, गन्ना, चावल, कपास आदि फसलों मे क्षति पहुंचाई है। फॉल आर्मीवॉर्म का प्रबंध पूर्ण रूप से कीटनाशकों पर ही निर्भर करता है और इसके लिए अनेक कीटनाशकों की तदर्थ स्वीकृति प्रदान भी की गयी है, लेकिन मक्की की कम कीमतें होने की वजह से यह किसानों को पुराना और सस्ता कम विषाक्त कीटनाशक चुनने पर मजबूर कर देती हैं।

जीवन चक्र–

इस कीट का जीवन चक्र मुख्यतः तापमान पर निर्भर करता है। मादा गुच्छे में 50–200 अंडे (28°C) देती है। अंडे हल्के क्रीम, ग्रे या सफेद रंग के होते हैं। इन अंडों का ऊष्मायन 3 दिन का होता है। अंडों में से लगभग 3–5 दिन में लार्वा (इल्ली) निकलता है।

इल्ली के छह इन्स्टार होते हैं और कुल अवधि (चरण) 14–19 दिन की होती है। इल्ली का सिर गहरे रंग का होता है इसमें उल्टा वाई (Y) के आकार का निशान होता है। शरीर के प्रत्येक खंड में चार उभरे हुए धब्बे होते हैं जिन्हें ऊपर से देखा जा सकता है। दूसरे से अंतिम शरीर खंड में वर्ग बनाते हुए चार काले धब्बे होते हैं।

प्यूपीकरण सामान्यतः मिट्टी में 2 से 8 सेमी की गहराई पर होता है। इल्लियाँ एक अंडाकार 20–30 सेंटीमीटर ढीले कूकून का निर्माण करती हैं जिसके सिल्क धागे मिट्टी के कण को भी बांध लेते हैं। प्यूपा गहरे भूरे रंग का होता है। इसकी अवधि 8 से 30 दिन तक हो सकती है।

वयस्क एक शलभ होता है जो 3–4 सेंटीमीटर चौड़ा होता है। इसका जीवन 2–3 सप्ताह का होता है। नर छायांकित भूरा, जिसके शिखर क्षेत्र में एक तिकोना सफेद पैच होता है जबकि मादा का रंग समान रूप से भूरापन लिए होता है। यह अपना जीवन चक्र इष्टतम् स्थितियों (28° तापमान) में 30 दिन में पूरा कर लेता है।

क्षति

फॉल आर्मीवॉर्म के प्रारंभिक चरणों की इल्लियाँ पत्तियों में खिड़की और शॉट छेद करती हैं। बाद में ये इल्लियाँ विकासशील पौधों के पत्ते के गोभ के अन्दर खाते हैं,

लेकिन भारी संक्रमण के दौरान, इल्ली मक्की की बालियों को भी खाती हैं। फसलों की वृद्धि की प्रारंभिक अवस्था में इसकी इल्ली अंकुरों को खाती हैं और परिपक्व अवस्था में वे पत्तियों की मध्यशिरा और नसों को छोड़कर सब खा जाती हैं।

प्रबंधन–

- ❖ खेत की गर्मी में गहरी जुताई करें ताकि कीट के पक्षियों द्वारा खा लिए जाएँ अथवा तेज धूप द्वारा नष्ट कर दिए जाएँ।
- ❖ मुख्य फसल के साथ मूंगफली या सूरजमुखी की फसल का हेर फेर करें।
- ❖ फसल की निगरानी के लिए फेरोमोन पाश का प्रयोग 5 पाश/हेक्टेयर के दर से करें।
- ❖ तदर्थ स्वीकृत निम्न जैव कीटनाशकों में से किसी का भी प्रयोग फॉल आर्मीवर्म से प्रबंधन हेतु किया जा सकता है मेटारिजियम एनिसोप्लाए/मेटारिजियम रिलेयी/ बिवेरिया बेसियाना/वेर्टीसीलियम (1 लीटर 108 CFU)/ 5ग्राम/लीटर या बेसिलस थुरिजेनसिस/2 ग्राम/लीटर या एन पी वी /400 एल ई/एकड़ ।
- ❖ आवश्यकता पड़ने पर भारत सरकार द्वारा तदर्थ स्वीकृत कीटनाशकों में से ही किसी का प्रयोग करें– क्लोरांट्रीनिलिप्रोल़ लेम्ब्ड़ा साईहैलोथ्रिन/35ग्राम/ हेक्टयर या साईननेनट्रीनिलिप्रोल़ थायामेथोक्साम/ 2.38ग्राम/किलोग्राम बीज या स्पिनटोरम/30ग्राम ए०आई०/हेक्टयर या क्लोरांट्रीनिलिप्रोल/40ग्राम ए०आई० /हेक्टयर या एमामेक्टिन बेंजोएट/200 ग्राम ए०आई०/हेक्टयर या एमामेक्टिन बेंजोएट़लुफेनुरोन /36ग्राम ए०आई०/हेक्टेयर या थायोडिकार्ब/750 ग्राम ए०आई०/हेक्टेयर या नोवलुरोऩ एमामेक्टिन बेंजोएट /13.5 ग्राम ए०आई०/ हेक्टयर ।

कीटनाशकों के छिड़कने के समय आवश्यक जानकारियां–

- ❖ कीटनाशक का प्रयोग सिफारिश की गयी निश्चित मात्रा में ही करें।
- ❖ कीटनाशकों के छिड़काव धूप में और कम हवा बहने की दशा में करें।
- ❖ छिड़काव के समय एप्रोन, चश्मा, टोपी और दस्तानों को पहने।
- ❖ कीटनाशकों के छिड़काव के बाद बाल्टी को डिटर्जेंट/ साबुन का उपयोग करके साफ पानी से धोया जाना चाहिए और अपने हाथ और पैर भी साफ करना चाहिए।
- ❖ छिड़काव के दौरान कुछ ना खाएं/पीएं।
- ❖ छिड़काव के तुरंत बाद खेत में जानवरों/श्रमिकों के प्रवेश से बचें।
- ❖ विषाक्तता के लक्षणों को देखने पर प्राथमिक चिकित्सा दें और रोगी को डॉक्टर को दिखायें और उपचार करें।

किसानों की आय बढ़ाने हेतु पूसा की उन्नत रबी फसलों की किस्में

राजवीर यादव, फिरोज हुसैन एवं अशोक के. सिंह
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली–110012

आने वाली फसलों में मुख्यता गेहूं, जौ, मसूर और सरसों की उन्नत किस्में पूसा संस्थान द्वारा निकाली गई है। इन के मुख्य विशेषताएं निम्न हैं:

गेहूं

एच. डी. 3059: यह किस्म पछेती बुवाई हेतु उपयुक्त है जो 121 दिन में पककर तैयार हो जाती है उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र हेतु उपयुक्त यह किस्म 42.6 क्विंटल/हेक्टेयर तक पैदावार दे देती है

एच. डी. 3086: उत्तर पश्चिमी और पूर्वी मैदानी क्षेत्रों हेतु उपयुक्त है यह समय से बुआई के लिए उपयुक्त है। उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में 121 दिन व उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में 145 दिन में पक कर तैयार हो जाती है। 56.3 क्विंटल /हेक्टेयर तक पैदावार।

एच.डी. 2967: उत्तर पश्चिमी व उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों हेतु उपयुक्त यह किस्म 135 व 145 दिन में पककर तैयार हो जाती है। पैदावार 47.5 क्विंटल/हेक्टेयर तक हो जाती है।

एच. डी. सी. एस. डब्लु. 18: यह किस्म राष्ट्रीय राजधानी क्षेत्र हेतु उपयुक्त है तथा संरचित खेती समय से पहले बुवाई के लिए उपयुक्त है। 150 दिन में पकने वाली यह किस्म 62.8 क्विंटल/हेक्टेयर तक उपज देती है।

एच.डी. 3226: उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्र हेतु उपयुक्त यह किस्म समय से सिंचित अवस्था में बोनी चाहिए। 57.5 क्विंटल/हेक्टेयर तक पैदावार देती है।

एच.डी. 3237: उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में 145 दिन में पककर तैयार हाने वाली यह है कि 48.4 क्विंटल/हेक्टेयर तक पैदावार दे देती है।

एच. डी. 3271: उत्तर पश्चिमी व उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों हेतु उपयुक्त यह किस्म अति पछेती सिंचित अवस्था में लगाई जा सकती है 104 दिन में पकने वाली तथा 32 क्विंटल/हेक्टेयर है

एच. डी. 3298: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस्म पछेती व सिंचित अवस्था के लिए है। 104 दिन में पक लेती है तथा 39.1 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार देती है।

एच. डी. 3293: उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्र में समय से तथा कम पानी की अवस्था के लिए उत्तम है। 129 दिन में पकने वाली 38.8 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार मिलती है

जौ:

वी.एच.एस. 400: उतरी पहाड़ी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस में 168 दिन में पककर तैयार होती है तथा 32.7 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार होती है

चना:

पूसा 372: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के साथ–साथ झारखंड, बिहार, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़ गुजरात व महाराष्ट्र के लिए उपयुक्त है। यह किस्म पछेती बुवाई हेतु सिंचित अवस्था के लिए उत्तम हैं। 125 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 19 क्विंटल/हेक्टेयर है।

बी.जी. 3022: काबुली चने की यह किस्म उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है 145 दिन में पकती है 18 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार देती है

बी.जी. 3043: उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों हेतु उपयुक्त यह किस्म असिंचित क्षेत्रों के लिए उत्तम है। 130 दिन में पकती है व 16 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार देती है।

बी.जी. डी. III: कर्नाटक के लिए उपयुक्त यह किस्म असिंचित क्षेत्रों के लिए है। 95 दिन में पकती है वह 17 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार देती है।

बी.जी. 3062: केंद्रीय क्षेत्र के लिए उपयुक्त यह किस्म समय पर बुवाई हेतु उपयुक्त है। 112 दिन में पकती है 22.7 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है

पूसा चना 10216: केंद्रीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस्म सिंचित क्षेत्रों के लिए है। 106 दिन में पकती है व 14.8 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है 20211

मसूर:

एल. 4076: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र में केंद्रीय क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस्म असिंचित क्षेत्रों के लिए है 125 दिन में पकती है वह 13.5 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है।

एल. 4147: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में बोई जाने वाली यह किस्म असिंचित क्षेत्रों के लिए है। 125 दिन में पक कर तैयार होती है वह 15 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है।

एल. 4727: केंद्रीय क्षेत्र के लिए उपयुक्त। असिंचित क्षेत्रों यह किस्म 103 दिन में पकती है व 11.4 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है

एल. 4729: केंद्रीय क्षेत्रों हेतु उपयुक्त यह किस्म असिंचित अवस्था के लिए उत्तम है। 103 दिन में पकती है व 17.5 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है ।

पी.डी.एम–1: हरियाणा व उत्तर प्रदेश हेतु उपयुक्त यह क्षारीय अवस्था के लिए उत्तम है। 111 दिन में पकती है। वह 9.3 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार देती है

पी.एस.एल. 9: यह किस्म हरियाणा व उत्तर प्रदेश के क्षारीय क्षेत्रों के लिए है। 112 दिन में पकती है व 9.49 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार देती है

सरसों

पूसा सरसों 25: उत्तर पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों के लिए उपयुक्त यह किस्म अगेती है। 115 दिन में पकती है व 15 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है।

पूसा 26: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्र हेतु उपयुक्त यह किस्म पछेती बुवाई हेतु उपयुक्त है। 126 दिन में पकती है वह 16.0 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार है।

पूसा सरसों 27: उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, उत्तराखंड व कोटा क्षेत्र के लिए उपयुक्त यह किस्म अगेती बुवाई हेतु उत्तम है। 118 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 15.4 क्विंटल/हेक्टेयर है।

पूसा सरसों 28: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों हेतु उपयुक्त यह किस अगेती बुवाई हेतु उत्तम है। 107 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 19.9 क्विंटल/हेक्टेयर है।

पूसा सरसों 30: पूर्वी राजस्थान, मध्य प्रदेश, उत्तर प्रदेश व उत्तराखंड के लिए समय से बुवाई हेतु उपयुक्त। 137 दिन में पकने वाली इस किस्म की पैदावार 18.24 क्विंटल/हेक्टेयर है।

पूसा डबल जीरो 31: उत्तर पूर्वी मैदानी क्षेत्रों में समय से बोये जाने वाली इस पीली सरसों की किस्म की पैदावार 23.3 क्विंटल/हेक्टेयर है तथा 142 दिन में पक कर तैयार होती है।

पूसा सरसों 32: उत्तर–पश्चिमी मैदानी क्षेत्रों में बोये जाने वाली इस किस्म को समय से सिंचित अवस्था में बोया जाता है 145 दिन में पक कर तैयार हो जाती है 27.1 क्विंटल/हेक्टेयर पैदावार होती है

गन्ना उत्पादन वृद्धि हेतु उन्नत शस्य तकनीक एवं अन्तः फसली खेती

सुभाष चन्द्र सिंह* एवं योगेन्द्र प्रताप सिंह**
*गन्ना शोध परिषद, शाहजहाँपुर (उ. प्र.)
**भा.कृ.अनु.प.–भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली110012

कृषकों द्वारा दो गुना आय प्राप्त करने एवं देश की अर्थव्यवस्था को सुदृढ बनाने हेतु गन्ने की उपज में अपेक्षित वृद्धि करना वर्तमान समय की मांग है। जबकि गन्ना खेती मे मजदूरों की उपलब्धता ,सूखा तथा जलभराव जैसी बिषम परिस्थितियों का गन्ना कृषकों को सामना करना पडता है। इसके अतिरिक्त गन्ने की खेती में पूँजी ,श्रमिक व अन्य संसाधन समय से न उपलब्ध होने के कारण गन्ने की उत्पादकता में अपेक्षित वृद्धि नही हो पा रही है। अतः ऐसी परिस्थितियों में गन्ने की अधिकतम उपज तथा कृषकों द्वारा दो गुना आय प्राप्त करने हेतु उ.प्र. गन्ना शोध परिषद विकसित गन्ना उत्पादन तकनीकी एवं सहफसली खेती को कृषकों द्वारा अपनाना चाहिए। जो निम्नवत है।

खेत की तैयारी

उचित नमी की दशा में पहली गहरी (2530 सेमी.) जुताई मिट्टी पलट हल से करने के बाद मिट्टी की किस्म के अनुसार 2—3 जुताई, हैरो व कल्टीवेटर से करने के उपरान्त पाटा लगाकर खेत को समतल एवं भुरभुरा बना लेना चाहिए।

मिट्टी पलट हल से हरी खाद की पलटाई

मिट्टी पलट हल से गहरी जुताई

बुवाई का समय

शरदकाल – 15 सितम्बर से 30 अक्टूबर

बसंतकाल – 15 फरवरी से 30 मार्च

देर बसंत – 15 अप्रैल से 30 अप्रैल

गन्ने की नवीन स्वीकृत प्रमुख किस्में

सामान्य क्षेत्र हेतु –

शीघ्र पकने वाली किस्मे – यू.पी 05125, को.शा. 08272, को.शा. 13231, को.शा. 13235, को. 0238, को.0118, को. 98014

मध्य देर से पकने वाली किस्मे– को.शा. 08279 ,को. शा. 08276, को.शा. 12232, को.शा. 14233, को.से. 11453, को.से. 13452, को. 05011

जलप्लाति क्षेत्र हेतु– यू.पी. 9530, को.से. 96436, को. शा. 10239

बीज गन्ना चयन एवं उपचार

स्वीकृत किस्मों के 1012 माह की शुद्ध, रोग व कीटमुक्त गन्ना फसल से चयनित बीज गन्ने का दो ऑख के टुकडे

काटकर के 0.1 प्रतिशत घोल (112 ग्राम दवा 112 ली0 पानी) में 5 मिनट तक पैडों को उपचारित कर बुवाई करना चाहिए।

ट्रेन्च डिगर से नाली खोलना

नाली में लम्बी टाइन कल्टीवेटर से कार्बनिक खाद व रासायनिक उर्वरकों को मिलाना एवं कडी परत तोडना

दोहरी पंक्ति ट्रेन्च डिगर

ट्रेन्च विधि से दोहरी पंक्ति में गन्ने की बुवाई

सिंचाई

साधारणतया गन्ने में अच्छी बढवार के लिए 175 से. मी. पानी की आवश्यकता होती है जिसका 100 से.मी. पानी वर्षा से तथा शेष हेतु सिंचाई करनी पडती है। इस विधि से सिंचाई नाली में करने से 50–60 प्रतिशत कम पानी लगता है। बुवाई उपरान्त पहली सिंचाई यथाशीघ्र नालियों में करते है। फिर मौसम अनुसार 15–20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई नालियों में करना चाहिए। वर्षा काल में या वर्षा के बाद यदि 20 दिन तक वर्षा नहीं होती है तो मिट्टी व जलवायु के अनुसार 20 दिन के अन्तराल पर सिंचाई अवश्य करना चाहिए।

ट्रेन्च में गन्ना जमाव के बाद सिंचाई

खरपतवार नियंत्रण

इस विधि से जल्दी–जल्दी सिंचाई करने से नालियों में खरपतवार अधिक निकलते है। दोहरी पंक्ति में खरपतवार

गन्ने में यांत्रिक खरपतवार नियंत्रण

नियंत्रण की दृष्टि से नालियों में कस्सी से गुडाई करना आसान है परन्तु यदि गुडडाई हेतु श्रमिक समय से नहीं मिलते है तो खरपतवार नाशी दवा मेट्रीब्यूजीन (70 प्रतिशत) 05 किग्रा0 एवं 24 डी 58 प्रतिशत) 2.5 ली0 प्रति हे? की दर से 1000 ली0 पानी में घोल बनाकर जमाव उपरान्त शरदकाल में 2 बार एवं बसंतकाल में 1 बार छिडकाव करना चाहिए।

मिट्टी चढाना एवं बंधाई

गन्ने के थानों की जड पर मिटटी चढाने से जडों का सघन विकास होता है। अतः वर्षा काल में गन्ने को गिरने से बचाने के लिए मई व जून में फावडे या ट्रेन्न डिगर मिटटी चढायें एवं जुलाई में पहली सिंगल तथा अगस्त – सितम्बर में कैंची बँधाई अवश्य करें।

फसल सुरक्षा

अप्रैल–मई में अंकुर बेधक व चोटी बेधक कीटों ये प्रभावित गन्नों को पतली से काटकर निकाल दें अथवा बेधक कीटों के नियंत्रण हेतु मार्च से अगस्त तक ट्राइकोग्रामा स्पे0 50,000 वयस्क/हे. 15 दिन पर बाँधना चाहिए। मई–जून के अन्त में 375 मिली./हे. की दर से क्लोरेंट्रानिलिप्रोल समुचित नमी की दशा में जड के पास ड्रेचिंग करके सिंचाई करें।

कटाई

ट्रेन्च विधि से बोये गन्ने की कटाई तेज धारदार आधुनिक औजार से जमीन की सतह से नीचे करनी चाहिए जिससे बावग गन्ने की उपज के कारण पेडी गन्ने का फुटाव एवं उत्पादन अधिक मिल सके।

उपज व चीनी परता

इस विधि से बुवाई करने पर जमाव अधिक (70–70 प्रतिशत) एवं एक समान होता है। तथा किल्ले कम मरते है जिससे मिल योग्य गन्नों की संख्या अधिक होने से गन्ने की उपज में 25––30 प्रतिशत तथा चीनी परता में 05 यूनिट तक वृद्धि होती है।

गन्ने के साथ अन्तः फसली खेती

गन्ने के साथ अन्तःफसली खेती करने से अधिक लाभ होता है क्योंकि ट्रेन्च विधि से बोये गन्ने मे जमाव अधिक होता है एवं अन्तः फसलों की प्रतियोगिता बहुत कम होती है। जिसमें अन्तः फसल के रूप में आलू, लहसुन, मटर, राजमा, लाही, गेहूँ, उरद, लोबिया, भिण्डी या अन्य उपयोगी फसलें उगाकर दोहरा आर्थिक लाभ अर्जित किया जा सकता है।

गन्ने में अन्तः फसली खेती हते महत्वपूर्ण सावधानियॉ

1. अन्तः फसली खेती हेतु एक ट्रेन्च के मध्य से दूसरे ट्रेन्च के मध्य की दूरी 120 से.मी. रखना चाहिए तथा अन्तः फसलों की निर्धारित पंक्तियॉ ही बोनी चाहिए।
2. अन्तः फसल शीघ्र पकने वाली, सीधी बढने वाली, कम फैलने वाली, अल्पावधि में अधिक लाभ देने वाली व मृदा पर अनुकूल प्रभाव डालने वाली होनी चाहिए।
3. गन्ने एवं अन्तः फसलों की क्षेत्र विशेष के लिये स्वीकृत उन्नतशील किस्मो का स्वस्थ बीज प्रयोग करना चाहिए।
4. पोषक तत्वों का प्रयोग गन्ना एवं अन्तः फसलों हेतु अलग–अलग उनके क्षेत्रफल के आधार पर करना चाहिए।
5. अन्तः फसल की बुवाई समयानुसार, गन्ना की बुवाई/जमाव के तत्काल बाद कर देनी चाहिए।
6. अन्तः फसल बोने के लिए मिट्टी की ऊपरी सतह में पर्याप्त नमी का होना आवश्यक है अन्यथा सिंचाई करके पर्याप्त नमी की दशा में अन्तः फसल की बुवाई करना चाहिए।

7. इस पद्धति में सिंचाई गन्ना या अन्तः फसल के आवश्यकतानुसार करना चाहिए।
8. अन्तः फसल जैसे ही पककर तैयार हो उसकी अविलम्ब कटाई/खुदाई कर लेनी चाहिए।
9. अन्तः फसलों का चुनाव करते समय स्थानीय परिस्थितियों को ध्यान में रखना चाहिए जैसे सिंचाई के साधन, जलवायु, मिट्टी की दशा एवं कृषक की आर्थिक स्थिति आदि। इसके साथ ही बाजार, सड़क, उद्योग धन्धों एवं स्थानीय आवश्यकताओं को भी ध्यान में रखना चाहिए।

ट्रेन्च विधि में गन्ना आलू

फलों की बागवानी से समन्बिधत सामान्य प्रश्न

मधुबाला ठाकरे, ए नागराजा, अमित कुमार गोस्वामी, चाव्लेश कुमार एवं ऋतुपर्णा सेनापति
फल एवं उद्यान प्रौद्योगिकी संभाग
भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली –110012

फलों के बागों को लगाना एवं उनका सही प्रबंधन करना एक अत्यंत महत्वपूर्ण कार्य है जिसके लिए पर्याप्त ज्ञान एवं योजना की आवश्यकता होती है। क्योंकि अन्य फसलों में की गई ग़लतियों का परिणाम केवल एक या दो वर्षों तक होता है किन्तु फलों के बाग़ लगाने में की गई ग़लतियों का परिणाम कई वर्षों तक सहना पड़ता है। इसलिए बाग़ लगाने के पहले पर्याप्त जानकारी इकठ्ठा कर लेनी चाहिए। जब भी कोई किसान नया बाग़ लगाने के विषय में सोचते हैं तो उनके मन में कई प्रश्न उठते हैं। यह प्रश्न ज़मीन की तैयारी, किस्मों का चयन से लेकर फलों की तुड़ाई, भण्डारण एवं पैकेजिंग से जुड़े हो सकते है। इसी तरह के कुछ प्रश्नों के समाधान के विषय में इस लेख में वर्णन किया जा रहा हैः

1. सर्वप्रथम जिस भूमि पर बाग़ लगाने की सोच रहे हैं वहाँ की मिट्टी एवं पानी का परीक्षण करवा लें। सामान्यतः किसी भूमि की उर्वरता का अनुमान वहाँ उपस्थित वनस्पति की वृद्धि के आधार पर लगाया जा सकता है। जहाँ वानस्पतिक वृद्धि अच्छी है तो वह भूमि उपजाऊ होती है। इसके साथ ही उस भूमि में पहले लगाईं गई फसलों के उत्पादन के आधार पर भी भूमि की उर्वरता का अनुमान लगाया जा सकता है। किन्तु मृदा की उर्वरता की सही जानकारी के लिए मृदा की जाँच करवाना चाहिए।
2. बगीचे के भूमि की सीमा रेखा में यदि बहुत बड़े वृक्ष हो तो उनकी काँट–छाँट करवाएँ। जिससे कि बगीचे में सूर्य का प्रकाश पर्याप्त मात्रा में आ सके। किन्तु कुछ फलों जैसे लीची इत्यादि में वायुरोधी वृक्षों की आवश्यकता होती है जिससे कि बगीचें में फल आने कि समय सूक्ष्म जलवायु क्षेत्र का निर्माण किया जा सके। यह गुणवत्तापूर्ण लीची उत्पादन में बहुत महत्वपूर्ण होता है।
3. किस्मों का चयनः बाज़ार में उनकी मांग तथा स्वयं के पास उपलब्ध संसाधनों के आधार पर करना चाहिए। इस तरह की किस्मों का चयन करना चाहिए जो ताज़े खाये जाने के साथ–साथ प्रसंस्करण के लिए भी उपयोगी हों। ऐसी किस्में जो किसी क्षेत्र विशेष में ही लगाई जा सकती हैं या क्षेत्र विशेष में ही कुछ ख़ास गुणवत्ता कि फल उत्पादित करती हैं, को ना लगाएं। उदाहरण के तौर पर आम की अल्फांसो किस्म। क्यों कि कितना भी अच्छा बाग़ प्रबंधन करें, वह गुणवत्ता नहीं प्राप्त की जा सकती।
4. बाग़ लगाने का सबसे उपयुक्त समय मानसून होता है जब नए लगाए पौधे बहुत आसानी से स्थापित हो जाते हैं। मानसून के पूर्व ही विश्वसनीय नर्सरी से पौधे की बुकिंग करवा लेनी चाहिए। आज कल सभी के मोबाइल में इंटरनेट की सुविधा होती है। इंटरनेट से बहुत सी निकटतम नर्सरी एवं कृषि संस्थानों का पता एवं फ़ोन नंबर मिल जाता है। जिससे किसान घर से ही फल विशेष की किस्म विशेष की उपलब्धता के बारे में पता लगा सकते हैं। साथ ही साथ पौधों की बुकिंग एवं पैसों का भुगतान भी कर सकते हैं। भा.कृ.अनु.प.– भारतीय कृषि अनुसन्धान संस्थान, (https://www.iari.res.in), भा.कृ.अनु.प.–केंद्रीय उपोषण बागवानी संसथान (http://cish.icar.gov.in/), भा.कृ.अनु.प.– राष्ट्रीय लीची अनुसंधान केंद्र (https://www.nrclitchi.org/), इत्यादि। फलों के पौधे जिस भी नर्सरी से खरीदें उसका विवरण ध्यान पूर्वक रखें। जिससे कि आगे आने वाले समय में फलत सम्बन्धी किसी भी समस्या का समाधान किया जा सके।
5. ग्रीष्म ऋतु में ही गहरी जुताई करके भूमि को समतल करके भूमि को समतल करवा लेना चाहिए। मृदा में जो भी पत्थर हो, या सख्त सतह हो उसे निकाल देना चाहिए।

6. पौधों के बीच की दूरी का चयन बहुत ही सोच समझ कर करना चाहिए। पौधों के बीच की दूरी बहुत सी बातों पर निर्भर करती है। जैसे कि किस्म, मृदा की उर्वरक क्षमता, जलवायु तथा बागवान का तकनीकी ज्ञान। दूरी इस हिसाब से रखनी चाहिए कि आगे आने वाले समय में बाग़ बहुत अधिक सघन ना होवें अन्यथा फल की उपज बहुत प्रभावित होती है। कई बार किसान दूसरे किसान भाइयों को देखकर बहुत अधिक सघन बाग़ लगा लेते हैं परन्तु उसी कुशलता से उसका प्रबंधन नहीं कर पाते। परिणाम स्वरुप बाग़ बहुत ही सघन हो जाता है। कभी–कभी सघन बागवानी के लिए ओज युक्त किस्म का चयन करने से भी किसान भाई बगीचे का प्रबंधन नहीं कर पाते। इसके अलावा बहुत उपजाऊ जमीन में सघन बाग लगाने पर पौधों में बहुत अधिक वानस्पतिक वृद्धि होती है और बागों का प्रबंधन बहुत ही कठिन हो जाता है। कभी–कभी सभी कारक सही होने पर, किसान भाइयों में तकनीकी ज्ञान की कमी होने से भी सघन बाग़ के प्रबंधन में कठिनाई होती है। उदाहरण के तौर पर अमरुद में कई किसान मीडो बागवानी में पौधों को लगाते हैं किन्तु सही प्रबंधन ना कर पाने की वजह से बाग़ घना हो जाता है जिससे की उत्पादन संभव नहीं होता।
7. गर्मियों में मई के माह में ही निर्धारित दूरी पर गड्ढे खुदवाकर खुला छोड़ देवें। जिससे कि ग्रीष्म ऋतु के तेज़ तापमान से कीट एवं बीमारियों को उत्पन्न करने वाले कारक नष्ट हो जावें।
8. उष्ण तथा उपोष्ण फलों के पौधे मानसून में ही लगाने चाहिए। मानसून के समय का वातावरण पौधों की स्थापना की लिए उपयुक्त रहता है। पौधे लगाने की तिथि निश्चित करने की पूर्व मौसम का पूर्वानुमान देख लेना चाहिए। ऐसा करने से बारिश के समय का पता लगाकर पौधे लगाने में आसानी होगी। इससे ना केवल पौधे आसानी से स्थापित होंगे बल्कि किसान के समय एवं संसाधनों की भी बचत होगी। जब भी पौधे लगाए उनकी जड़ युक्त मिट्टी की पिंडी ना तोड़े। सिर्फ पॉलिथीन हटाएँ और पौधों को लगाएं। पौधों को लगाने के पश्चात् मिट्टी को अच्छे से दबा दें। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो पौधों की जड़ें मृदा की बीच उपस्थित रंध्रों में मौजूद हवा की सम्पर्क में आकर सूखने लगती हैं। मानसून में पौधों को सींचने की आवश्यकता नहीं होती, किन्तु यदि वर्षा नहीं होती तो सिंचाई करनी चाहिए।
9. कुछ फल वृक्षों जैसे लीची में स्टेकिंग अर्थात सहारे की आवश्यकता होती है। जिससे की पौधें का तना सीधा रहे और भविष्य में एक अच्छा फ्रेमवर्क निर्मित हो सके। पौधों की स्थापना की बाद दूसरा मुख्य कार्य पौधों की ट्रेनिंग या संधाई का होता है। संधाई का बहुत ही अधिक महत्त्व है इस पर ही फल वृक्ष की भविष्य की उत्पादन क्षमता निर्भर करती है। संधाई का मुख्य उद्देश्य फल वृक्ष को एक सुदृढ़ फ्रेमवर्क प्रदान करना होता है। यह तीन प्रकार की होती है सेंट्रल लीडर सिस्टम मॉडिफाइड लीडर सिस्टम, ओपन सेंटर सिस्टम। अधिकतर फल वृक्षों को मॉडिफाइड लीडर सिस्टम में ट्रेन किया जाता है। फलों में एक ही मुख्य तना रखना चाहिए। एक से अधिक रखने पर उनके टूटने की संभावना रहती है। रोपण दूरी के आधार पर प्राथमिक एवं द्वितीयक शाखाओं की संख्या को रखना चाहिए। ट्रेनिंग के पश्चात प्रूनिंग (छँटाई) की महत्त्व की चर्चा करते हैं। फल वृक्ष को उत्पादक स्थति में बनाये रखने की लिए उनकी फल उत्पादन करने की प्रकृति (बिअरिंग हैबिट) की आधार पर छँटाई की आवश्यकता होती है। छँटाई का तरीका एवं समय, फल विशेष पर निर्भर होता है। और सही तरीके से छँटाई करने की लिए फल की वृक्ष की बिअरिंग हैबिट की जानकारी होना तथा कार्य कुशलता का होना बहुत आवश्यक है। छँटाई के विषय में पूर्ण जानकारी होने की पश्चात ही बागवान को सघन बागवानी की तरफ अग्रसर होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं है तो उसे सघन बागवानी नहीं करनी चाहिए। जैसे आम और लीची में फल टूटने के बाद हल्की छंटाई की जाती है। किन्तु अमरुद में फल तुड़ाई के बाद छंटाई के साथ–साथ अप्रैल–मई में भी छंटाई की जा सकती है जिससे कि बारिश के फूल और फल गिराए जा सके। इस तरह की छंटाई को फसल नियंत्रण कहते हैं। इसी तरह से भिन्न–भिन्न

फलों में अलग–अलग प्रकार की छंटाई की जाती है।

10. सिंचाई का भी फल उत्पादन में बहुत महत्तव है। यह ना सिर्फ पौधों को जीवित रखने के लिए आवश्यक होती है बल्कि फलों के उत्पादन की गुणवत्ता को भी निर्धारित करती है। सबसे उत्तम सिंचाई प्रणाली टपक विधि है। किन्तु यदि बागवान यह लगाने में सक्षम नहीं है तो वह थाले बनाकर उन्हें नालियों द्वारा जोड़कर सिंचाई कर सकता है। इस विधि में पौधों की दो कतारों के बीच एक नाली बनाई जाती है इसके पश्चात नाली के दोनों तरफ के पौधों के थालों को छोटी नालियों द्वारा जोड़ा जाता है। इस विधि का लाभ यह होता है कि यदि किसी पौधे में कोई रोग लगता है तो भी वह दूसरे पौधों को नहीं लगता है। फलों की तुड़ाई के पूर्व सिंचाई ना करें। फूल आने के पहले भी कुछ फलों जैसे आम, लीची में सिंचाई नहीं करनी चाहिए।
11. फलों में पोषण प्रबंधन कि बात करें तो सबसे उत्तम गोबर की खाद, वर्मीकम्पोस्ट इत्यादि है। किन्तु यदि रासायनिक खाद की आवयश्कता है तो मृदा की जाँच कराने के पश्चात ही एन., पी., के. डालना चाहिए। उर्वरक की मात्रा, समय एवं विधि फल के प्रकार के अनुसार बदल जाती है। जरूरत से अधिक रासायनिक उर्वरकों का प्रयोग ना करें।
12. खरपतवार प्रबंधन भी बाग़ प्रबंधन का एक महत्वपूर्ण अंग है। खरपतवार ना सिर्फ बाग़ की शोभा को ख़राब करते हैं परन्तु वे मृदा से पोषक तत्वों को लेते हैं तथा बहुत सी बीमारियों एवं कीटो को भी आश्रय प्रदान करते हैं इसलिए इन्हें समय –समय पर साफ करना आवश्यक है। इन्हें साफ करने के लिए बहुत सी मशीनें आती हैं जिनकी सहायता से इन्हें कम समय में आसानी से साफ किया जा सकता है। रासायनिक खरपतवारनाशी भी उपलब्ध हैं किन्तु इनका उपयोग सोच समझ कर करना चाहिए। क्योंकि ऐसे फल वृक्ष जिनकी शोषक जड़ें उथली होती हैं उनमें हानि पहुँचाते हैं।
13. फलों की तुड़ाई एवं तुड़ाई उपरान्त प्रबंधन एक बहुत ही महत्वपूर्ण विषय है। क्योंकि किसान की आय को अंततः यही निर्धारित करती है। किसान भाइयों को हमेशा यह सलाह दी जाती है कि वे समूह बनाकर फलों की बिक्री विपणन (मार्केटिंग) करें। इस तरह उन्हें अधिक दाम तथा फलों के सड़ने या ख़राब होने से होने वाले नुकसान को कम किया जा सकता है। भण्डारण तथा परिवहन के लिए हमेशा नई तकनीक को अपनाये। यदि वे अपने क्षेत्र विशेष की किसी किस्म को आगे बढ़ाना चाहते हैं वे अपनी फल उपज को अपने नाम से बेच सकते हैं साथ ही साथ जी आई टैग भी प्राप्त करने की दिशा में कदम उठा सकते हैं।

ऊपर वर्णित तथ्यों के साथ–साथ बागवान को यह कोशिश करना चाहिए कि वह बगीचे में साफ–सफाई का ध्यान रखें। बगीचे में डाले गए कीटनाशकों, उर्वरकों एवं अन्य रसायनों की डाली गई मात्रा एवं तिथि का ब्यौरा रखें। हर साल बगीचे में लगने वाली लागत एवं कमाई का भी लेखा–जोखा रखें।किसान भाइयो ग्लोबल गैप में रजिस्ट्री कर के अपने फलों को निर्यात करने के लिए उपयुक्त बना सकते हैं। इसके लिए फल उत्पादन के प्रत्येक चरण में उनके द्वारा बनाये गए निर्देशों का पालन करना होता है और इन संस्थाओं के अंतर्गत आने वाले अधिकारी समय–समय पर बाग़ का निरीक्षण करने के बाद तथा उनके द्वारा तय मानकों पर खरा उतरने पर, फल उत्पादक अपने उत्पादन को अंतर्राष्ट्रीय बाज़ार में बेच सकता है। विभिन्न मार्केटिंग बोर्ड एवं किसान सहाकरी समितियां इस दिशा में किसानों की सहायता करती हैं। जैसे महाराष्ट्र स्टेट एग्रीकल्चर मार्केटिंग बोर्ड (https://www.msamb.com/Export/GlobalCertification) इस दिशा में किसानों की सहायता करती है।

इसके साथ में किसान भाइयों को सलाह दी जाती है कि एक क्षेत्र के किसान मिलकर समूह बनाएं और मिलकर काम करें। ऐसा करने से उनके लिए फल उत्पादन की विभिन्न समस्याएं कम हो जाएंगी। इस तरह से किसान भाई अपने बगीचे से ज्यादा उत्पादन एवं आय प्राप्त कर सकते हैं।

लेखकों से...

1. अपने तकनीकी एवं लोकप्रिय लेख हिन्दी में टाइप करवाकर भेजें।
2. रचना पृष्ठ के एक ओर उचित हाशिया और पंक्तियों के बीच स्थान छोड़कर सम्पादक, प्रसार दूत के पास यथा समय भेजें।
3. वर्ष 2015 से प्रसार दूत का अंक त्रैमासिक किया गया है। लेखकों से अनुरोध है कि प्रथम अंक के लिए प्रकाशनार्थ सामग्री 30 जनवरी, द्वितीय अंक 30 अप्रैल, तृतीय अंक 31 जुलाई तथा चतुर्थ अंक 31 अक्तूबर तक अवश्य भेज दें।
4. तकनीकी पर दी गई जानकारी की पूरी जिम्मेदारी लेखक की होगी। रचना को प्रकाशित करने या न करने का पूरा अधिकार सम्पादक मंडल को होगा।

प्रसार दूत का प्रकाशन समय

प्रथम अंक मार्च, द्वितीय अंक जून, तृतीय अंक सितम्बर और चतुर्थ अंक दिसम्बर में प्रकाशित होगा।

वार्षिक शुल्क 80/- मनीऑर्डर द्वारा भेजें।

शुल्क और सामग्री भेजने एवं पत्रिका मंगवाने का पता

प्रभारी अधिकारी
कृषि प्रौद्योगिकी सूचना केन्द्र (एटिक)
भा.कृ.अ.प.-भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली-110012
फोन: 011-25841670, 25846233, 25841039, 25803600
पूसा एग्रीकॉम: 1800 11 8989 (नि:शुल्क)

पाठकों से...

प्रसार दूत में प्रकाशित किसी भी तकनीकी के विषय में अंश और समाधान हेतु आपके पत्रों का स्वागत है। विषयों पर अधिक जानकारी के लिए लेखक से सीधे भी सम्पर्क कर सकते हैं।

किसानों से...

यदि आपकी खेती व पशु-पालन संबंधी कोई विशेष समस्या है, तो लिखकर भेजें। हम प्रसार दूत के माध्यम से उसका समाधान आप तक पहुंचाएंगे।

अन्त में ...

आपकी खुशहाली ही हमारी सफलता है।

प्रो. एम एस स्वामीनाथन पुस्तकालय

निदेशक, भारतीय कृषि अनुसंधान संस्थान, नई दिल्ली 110012 द्वारा प्रकाशित तथा
मैसर्स एम एस प्रिंटर्स, सी-108/1 बैक साइड नारायणा इंडस्ट्रीयल एरिया, फेस-1, नई दिल्ली-110028, द्वारा मुद्रित
फोन: 7838075335, 9899355565, 9899355405,